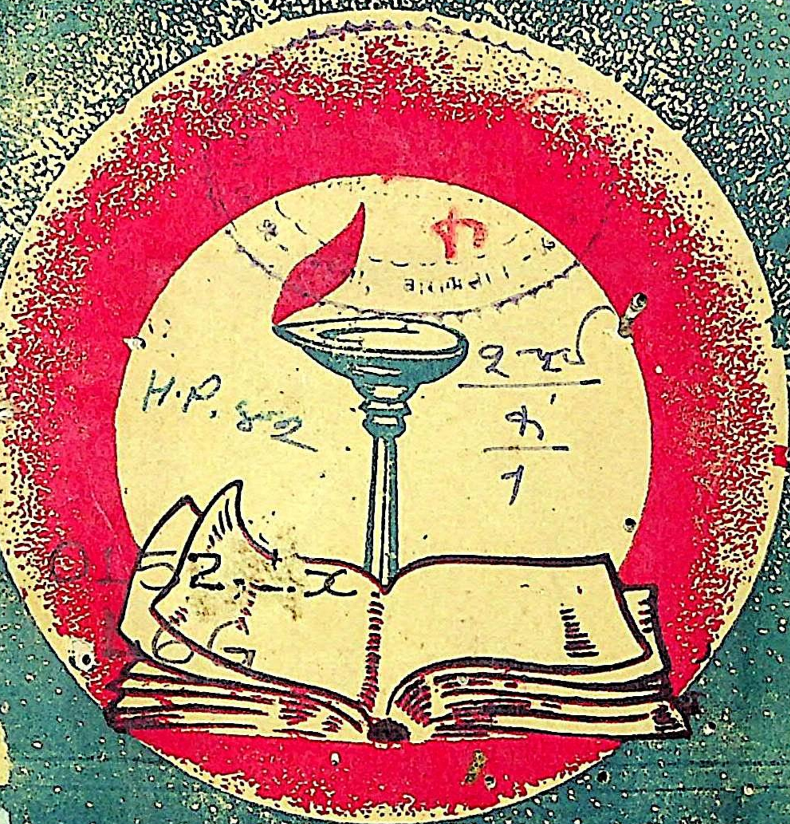
# कविता काकली





कृष्णदेव प्रसाद गौड़

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

# कविता काकली



संपादक


कृष्णदेव प्रसाद गौड़ एम. ए. एल. टी.,

भूतपूर्व आचार्य

डी. ए. वी. इण्टर कालेज, वाराणसी ।



प्रकाशक

मनोहर प्रकाशन

के १४।४ जतनबर, वाराणसी

१९७६ ]                    [ मूल्य ३.०० रु०

प्रकाशक
मनोहर प्रकाशन
के १४/४ जतनबर, वाराणसी



इस पुस्तक के पूर्व संस्करण नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, द्वारा प्रकाशित हुए थे।



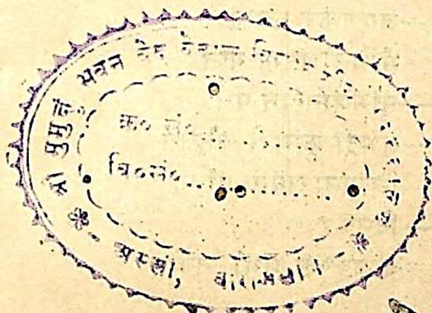
मुद्रक—
फाइन प्रिंटिंग वर्क्स
जतनबर,
वाराणसी—२२१००१

# वक्तव्य

यह संकलन हाईस्कूलों के विद्यार्थियों के लिए किया गया है। अंतर-वर्तीय बोर्ड ने जो 'क्राइटेरिया' बनाया है उसको ध्यान में रखकर रचनाएँ चुनी गयी हैं। विद्यार्थियों का ध्यान रखते हुए ऐसी ही रचनाएँ चुनी गयी हैं जो साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ हों। हिंदी की उत्तरोत्तर वृद्धि होने के कारण हिंदी का मानदण्ड भी ऊँचा हो गया है। मेरा विचार है इस संकलन के द्वारा विद्यार्थियों का काव्य-ज्ञान बढ़ेगा।

आरम्भ में कवि की जीवनी, उसकी साहित्यिक विशेषता, तथा संकलित रचना की दृष्टिभूमि और उसके भावों पर भी प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के अन्त में जो टिप्पणियाँ हैं वह विशेष शब्दों का अर्थ बताती हैं।

संपादक



# पाठ-सूची

# कबीर साहब

[ सं० १४४६–१५७५ ]

कबीर के संबंध में ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। उनकी रचनाएँ तथा परंपरागत कथाओं से कुछ पता चलता है। काशी के पास लहरतारा एक गाँव है उसी के पास तालाब के निकट एक जुलाहे ने इन्हें पाया। उसी ने इन्हें पाला-पोसा तथा अपना काम सिखाया। एकाएक गंगा के किनारे प्रातः समय स्वामी रामानन्द से इनकी भेंट हो गयी। इन्हीं के यह शिष्य हो गये। इन्होंने किसी पाठशाला में शिक्षा नहीं पायी। संगति से इन्होंने हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया। योगियों से भी इन्होंने योग की बहुत बातें सुनी थीं। ये ज्ञान-मार्ग के निर्गुण उपासना के सन्त थे। इनका सम्प्रदाय कबीर-पंथ कहा जाता है। इस सम्प्रदाय में हिन्दू-मुसलमान दोनों हैं।



इन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक पाखण्ड के विरोध में आवाज उठायी। हिन्दू-धर्म और इस्लाम दोनों में जहाँ बुद्धिहीन, तर्कहीन बातें धर्म के नाम पर चलती थीं उनका जोरदार खण्डन और आलोचना की। यदि इन्हें पहला हिन्दी का व्यंग कवि कहा जाय तो अनुचित न होगा। इनकी शिक्षा मार्मिक होती थी। इन्होंने दोहे तथा गेय पद भी लिखे हैं, जिन्हें सबद कहते हैं। इनकी भाषा को रामचन्द्र शुक्ल ने सधुक्कड़ी भाषा कहा है। इसका अर्थ है वह हिन्दी भाषा जिसमें राजस्थानी तथा पंजाबी मिली हो। कहीं-कहीं गीतों में ब्रज-भाषा तथा पूरबी बोली भी मिली है। नीचे

दिये हुए उनके दोहों में नीति की शिक्षाएँ हैं। इन दोहों से पता चलता है कि यह उपदेश देने के लिये तथा प्रचार के लिये लिखे गये हैं। इन्होंने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी हैं। इनकी अनेक रचनाएँ लोकोक्तियाँ वन गयी हैं।

सबदों में भी इन्होंने प्रचलित धार्मिक आडंबरों का खण्डन किया है। इनके राम दसरथ के पुत्र राम नहीं थे। निर्गुण ब्रह्म को इन्होंने राम के नाम से पुकारा है। इनके अनेक पद योग सम्बन्धो भी हैं। इन्होंने अपनी भाषा में व्याकरण इत्यादि पर ध्यान नहीं दिया है। क्योंकि इन्हें अपनी भाषा का चमत्कार नहीं दिखाना था, जनता के सम्मुख अपना विचार रखना था इसीलिये इन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो लोगों में घर कर जाय।

इनकी रचनाओं में इनके शिष्यों ने बहुत इनके नाम पर गढ़कर मिला दिया है इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बीजक' है।

## साखी

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निसि बासर सुख निधि लहा, अंतर प्रकटा आप ॥१॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिट गया; दीपक रेखा माहिं ॥२॥
भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलका कहूँ तो झूठ।
मैं का जानों राम को, नैनन कभी न दीठ ॥३॥
कहा कियों हम आय कै, कहा करेंगे जाय।
इत के भये न उत्त के, चल में मूल गवाय ॥४॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
आपन तन शीतल करै, औरन को सुख होय ॥५॥
करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछिताय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय ॥६॥

उत तें कोय न आवई, जासों पूछूँ धाय।
इन तें सब ही जात हैं, भार लदाय लदाय ।।७।।
रासि पराई राखता, खाया घर का खेत।
औरन की परबोधता, मुख में परिया रेत ।।८।।
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
एकै आखर पीउ का, पढ़े सो पंडित होय ।।९।।
ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय।
सुरबन कलस सुरा भरा, साधू निंदा सोय ।।१०।।
माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर ।।११।।
जाको जेता निरमया, ताको तेता होय।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटै होय ।।१२।।
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं।
ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ छुडावै बाँहि ।।१३।।
कुमोदिनी जलहर बसै, चंदा बसै अकास।
जो जाही की भावना, सो ताही के पास ।।१४।।
दोष पराये देखि कर, चला हसंत हसंत।
आपन चित्त न आवई, जिनको आदि न अंत ।।१५।।
सिख को ऐसा चाहिए, गुरु को सरबस देय।
गुरु को ऐसा चाहिए, सिख का कछू न लेय ।।१६।।
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे हैं लाज ।।१७।।
सिर राखे सिर जात हैं, सिर काटे सिर होय।
जैसे बाती दीप की, कटै उजेरा होय ।।१८।।
नदन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु बान।
यह तीनों बहुतैं नवैं, चीता चोर कमान ।।१९।।
माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनवां तो दस दिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं ।।२०।।

तन सराय, मन पाहरु, मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, देखा ठोक बजाय ॥२१॥
मूरख के समझावते, ज्ञान गाँव को जाय।
कोयला होय न ऊजरा, सौ मन साबून खाय ॥२२॥
चाह मिटी, चिंता गई, मनुवां बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥२३॥
गो धन, गज धन, बाजि धन, और रतन धन खान।
जो आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥२४॥
जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।
यह आपा तू डार दे, दया करै सब कोय ॥२५॥

## सबद

मोको कहाँ ढूँढ़ता बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं छगरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरा गड़ास में॥
नहीं खाल में, नहीं पूँछ में ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में॥
ना तो कौनो क्रिया करम में नाहीं जोग बिराग में।
खोजिहौ यह तो तुर्तै मिलिहौ पलभर की तालास में॥
मैं तो रहो सहर के बाहर मेरी पुरी मवास में।
कहै कबीर सुनो भई साधो सब सासों की सांस में ॥१॥

काहे री नलनी तूं कुमिलानी,
तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल मैं उतपति जल में बास, जल मैं नलनी तोर निवास।
ना तलि तपति न उपरि आग, तोर हेतु कहु कासनि लागि।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मुए हमारे जान ॥२॥

हरि बिन बैल बिराने ह्वै हैं।
चार पाँव दुइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गैहै॥
ऊठत बैठत ठेगा परिहै तब कत मूड लुकैहै।
फाटे नाक न टूटे का धन कोदौ को भुस खैहै॥

सारो दिन डोलत बन महिया अजहु न पट अघैहै ।
जन भगतन को कही न मानो कीयो अपनी पैहै ॥
दुख सुख करत महाभ्रम बूडौ अनिक योनि भरमैहै ।
रतन जनम खोयो प्रभु विसऱ्यो इह अवसर कत पैहै ॥
भ्रमत भिरत तेलक के कपि ज्यों गति बिन रैनि बिहैहै ।
कहत कबीर राम नाम बिनु मूंड़ धुनै पछितैहै ॥३॥

हरि बिन कौन सहाई मन का ।
मात पिता भाई सुत बनिता हितु लागो सब फन का ॥
आगै कौ किछु तुलहा बांधहु कहा भरोसा धन का ।
कहा विसासा इस भांडे का इत नकु लागे ठनका ॥
सगल धर्म पुन्न फल पावहु धूरि वांछहु पद सब जन का ।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु इहु मन उड़न पखेरू वन का ॥४॥

—————

# सूरदास

[ सं० १५४०–१६२० ]

अनेक प्राचीन कवियों की भाँति सूरदास के विषय में भी निश्चित समय कुछ ज्ञात नहीं है। किंवदन्ती और दंत-कथाओं द्वारा बहुत कुछ उनके जीवन के सम्बन्ध में जाना गया है। उनके मरण तथा जन्म की तिथियाँ निश्चित नहीं हैं। खोज के आधार पर जो अनुमान लगाया गया है वही ऊपर दिया गया है। यह बात निश्चित है कि आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क के किनारे रुनुकता ग्राम में यह रहते थे। यह अंधे थे यह तो इनके नाम से प्रकट होता है, किन्तु इनकी रचनाओं में अनेक ऐसे वर्णन आये हैं जिनसे यही कहा जा सकता है कि यह जन्म से अंधे नहीं थे। रंगों का वर्णन, पुरुषों का वर्णन, वस्त्रों का वर्णन जैसा इन्होंने किया है वैसा कोई जन्म से अन्धा नहीं कर सकता। इनकी भेंट वल्लभाचार्य से हो गयी। उनके साथ ये वृन्दावन चले आये। वहीं भगवान की भक्ति में तल्लीन होकर पद बनाते और गाते थे। कहा जाता है इन्होंने सवा लाख पद बनाये किन्तु अब कुछ सहस्र पद ही मिलते हैं। उन पदों का संग्रह सूर-सागर के नाम से विख्यात है। इनके पद भागवत् के आधार पर बने हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने जो अष्टछाप की स्थापना की उसमें पहले कवि सूरदास ही हैं।

यों तो पहले भी कवि हो गये हैं किन्तु साहित्यिक सुषमा तथा सौन्दर्य की दृष्टि से यदि देखा जाय तो सूर ही पहले हिन्दी के कवि हैं। इनकी भाषा प्रांजल, मँजी ब्रजभाषा है। इनकी रचनाओं में मधुरता, सरलता

और कोमलता पायी जाती है। सूरदास ने वात्सल्य, प्रेम, विरह आदि भावों को अपनी रचना में बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। यद्यपि पूतनावध, कालिया-मर्दन, गोवर्धन-लीला, कंस-वध का वर्णन भी इन्होंने किया और इनके द्वारा कृष्ण के लोकनायक होने के पक्ष को भी दिखाया है; किन्तु इनकी विशिष्टता भगवान् कृष्ण की भक्ति का मधुर पक्ष ही है। इन्होंने कृष्ण के लोकनायक पक्ष को नहीं ग्रहण किया। कृष्ण के बाल्य-जीवन का जितना सहृदय, मनोवैज्ञानिक तथा स्वाभाविक वर्णन इन्होंने किया है, वैसा हिन्दी में और कोई कवि नहीं कर सका। प्रेम के वियोग तथा सयोग दोनों अवस्थाओं का इन्होंने मार्मिक वर्णन किया है। इन्होंने कृष्ण को मधुरिमामय सरस भगवान् का अवतार माना और इसी दृष्टि से उनका वर्णन किया है। इनकी भक्ति सखा-भाव की थी। सूर के कृष्ण भागवत् के कृष्ण हैं, गीता के नहीं। भ्रमर गीत में इन्होंने सगुण भक्ति का प्रौढ़ता से समर्थन किया है।

नीचे के अवतरणों में छः पद विनय के हैं। इसके पश्चात् छः पद उनकी बाललीला के हैं। फिर श्याम के सौंदर्य का वर्णन है। अन्त में वे मार्मिक और हृदय-ग्राही पद हैं जिनके द्वारा गोपियों के मन के वे भाव व्यक्त किये गये हैं जो श्याम के वियोग में उठे हैं।

## विनय

चरन कमल बंदौं हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौ सब कछु दरसाई।।
बहिरो सुनै, मूक पुनि बोले, रंक चले सिर छत्र धराई।
"सूरदास" स्वामी करुनामय बार बार बंदौं तेहि पाई।।१।।

सबै दिन एकै से नहिं जात
सुमिरन ध्यान कियौ करुहरि कौ जब लगि तन कुसलात।
कबहूँ कमला चपल पाइकै टेढ़े टेढ़े जात
कबहुँक मग मग धूरि बटोरत भोजन कौ बिलखात।

या देही कौ गरब बावरो तदपि फिरत इतरात।
आद विवाद सबै दिन बीते खेलत ही अरु खात ।।
है बड, हौ हू बहुत कहावत, सूधे कहत न बात।
जोग न जुक्ति, ध्यान नहिं पूजा वृद्ध भये अकुलात ।।
बालापन खेलत ही खोयौ तरुनापन अलसात।
"सूरदास" औसर के बीते रहि है पुनि पछितात ।।२।।

प्रभु मैं सब पतितन को टीकौ।
और पतित सब द्यौस चारि के मैं तो जन्मत ही कौ ।।
बधिक अजामिल गनिका तारी और पूतना ही कौ।
मोहि छांड़ि तुम और उधारे मिटै सूल क्यों जी कौ ।।
कोउ न समरथ अब करिबे को खैंचि कहत हौ लीकौ।
मरियत लाज सूर पतितनि में कहत सबन में नीकौ ।।३।।

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करो ।।
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो ।।
एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब मिलि कै दोउ एक बरन भए सुरसरि नाम परो ।।
एक जीव इक ब्रह्म कहावत "सूर स्याम" झगरो।
अब की बेर मोहिं पार उतारो नहिं पन जात टरो ।।४।।

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै ।।
कमल नैन को छांड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंग को छांड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै ।।
जिह मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै।
"सूरदास" प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ।।५।।

तजौ मन हरि विमुखन कौ संग ।
जिन संग कुबुधि उपजति है परत भजन में भंग ।।
कहा होत पय पान कराये विष नहिं तजत भुजंग !
कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान नहाये गंग ।।
खर कौ कहा अरगजा लेपन, मरकर भूषन अंग ।
गज को कहा नहाये सरिता बहुरि धरै खहि अंग ।।
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतो करत निखंग ।
"सूरदास" खल, कारी कामरि चढ़ै न दूजौ रंग ।।६।।

## बाल लीला

मैया कबहिं बढ़ैगो चोटी ।
किती बार मोहिं दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी ।।
तू जो कहति बल की बैनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी ।
काढ़त गुहत न्हवावत ओछत नागिनी सी भुँई लोटी ।।
काचो दूध पिआवत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
"सूर"स्याम चिरजिवो दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ।।७।

सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरुन चलत, रेणु तन मंडित, मुख दधि लेप किये ।।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिये ।
लट लटकनि मनो मत्त मधुपगन मादक मदहि पिये ।।
कठुला कंठ, ब्रज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिये ।
धन्य "सूर" एकौ पल या सुख का सत कल्प जिये ।।८।।

किहि बिधि करि कान्हे समुझैहों ।
मैं ही भूलि चंद दिखरायो ताहि कहत मोहिं दै, मैं खैहों ।।
अनहोनी कहुँ होत कन्हैया देखी सुनी न बात ।
यह तौ आहि खिलोना सबको खान कहत तेहि तात ।।

यहै हेत लवनी नित मो को छिन छिन साँझ सवारे।
बार बार तुम माखन माँगत देऊँ कहाँ ते प्यारे ।।
देखत रहौ खिलौना चंदा आरि न करो कन्हाई।
"सूर" स्याम लियो महरि जसोदा नंदहिं कहत बुझाई ।।९।।

जेंवत कान्ह नंद इक ठौरे।
कछुक खात लपटात दुहूँ कर बालक है अति भोरे ।।
बरा कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टकटौरे।
तीछन लगि नयन भरि आये रोवत बाहर दौरे ।।
फूकति बदन रोहिनी ठाढी लिये लगाय अंकोरे।
"सूर स्याम कौ मधुर कौर दे कीन्हें तात निहोरे ।।१०।।

मोहन कांहे न उगिलौ माटी ।
बार बार अनरुचि उपजावति महरि हाथ लिये साँटी ।।
महतारी सौं मानत नांहीं कपट चतुरई ठाटी।
बदन उघारि दिखायौ अपनौ नाटक की परिपाटी ।।
वड़ी बार भई लोचन उघरे भरम जवनिका फाटी।
"सूरदास" नंदरानि भ्रमति भई कहत न मीठी खाटी ।।११।।

कन्हैया तू नहिं मोहि डरात ।।
षटरस घरे छोड़ि, कत पर घर चोरी करि करि खात ।।
बकनि बकति तोसौं पचि हारी नैकहु लाज न आई।
ब्रज परगन सिकदार महर, तू ताकी करत नन्हाई ।।
पूत सपूत भयो कुल मेरो अब मैं जानी बात।
"सूर स्याम अबलौं तोहिं बकस्यौ तोरी जानी घात ।

## श्याम सौन्दर्य

ह..र मुख किधौं मोहिनी माई।

बोलत बचन मंत्र सौं लागत गति मति जात भुलाई ।।

कुटिल अलक राजत भ्रुव ऊपर जँह तँह रहि बगराई।
स्याम फांसि मन करष्यो हमरी अब समझी चतुराई।।
कुंडल ललित कपोलन झलकत उनकी गति मैं पाई।
"सूर" स्याम जुवती मन मोहति जे संग करत सहाई।।१३।।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नंदनंदहि नाना भाँति नचावति।।
राखति एक पाय ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञागुरु कटि टेढ़ी ह्वै जावति।।
अति आधीन सुजान कनौडे गिरधर नारि नवावति।
आपुन पौडि अधर सेज्या पर कर पल्लव सन पद पलुटावति।।
भृकुटी कुटिल फरक नासापुट हम पर कोपि कुपावति।
'सूर' प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुसीस डोलावति।।१४।।

## स्याम का वियोग

अँखियाँ हरि दरसन को भूखी।
कैसे रहे रूप रस राँची ये बतियाँ सुनि रूखीं।।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तव एती नहिं भूखी।
अब इन जोग संदेसनि ऊधौ, अति अकुलानी दूखी।।
बारक वह मुख फेरि दिखावौ दुहि पय पियत पतूखी।
"सूर" सिकत हठि नाव चलावौ जे सरिता है सूखी।।१५।।

ऊधौ, अब नहिं स्याम हमारे।
मधुबन बसत बदलि से गे वै माधव मधुप तिहारे।।
इतनिहिं दूर भये कछु और जोहिं जोहि मगु हारे।
कपटी कुटिल काक कोकिल ज्यौं अंत भए उडि न्यारे।।
रस ले भँवर जाय स्वारथ हित प्रीतम चितहिं बिसारे।

"सूरदास" उनसों का कहिये जे नतहूँ मन कारे।।१६।।

बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजै ।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाला की पुंजै ।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूले अलि गुंजै ।
पवन, पानि घनसार, सजीवनि दधि सुत किरन भानु भई भुँजै ॥
ये ऊधो कहियो माधव सों बिरह करद कर मारत लुँजै ॥
"सूरदास" प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजै ॥१७॥

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब ते स्याम सिधारे ॥
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भए कारे ।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी उर बिच बहत पनारै ॥
"सूरदास" प्रभु अंबु बढ्यो है गोकुल लेहु उबारे ।
कह लो कहौं स्याम घन सुन्दर बिकल होत अति भारे ॥१८॥

———

# जायसी

## [ सं० १५४९–१५९८ ]

मलिक मुहम्मद जायसी जायस, जिला रायबरेली, अवध के रहनेवाले थे। ये सूफीमत के फकीर थे। ऊपर इनके जन्म तथा मरण की जो तिथि दी हुई है वह निश्चित नहीं है; किन्तु विद्वानों ने ऐसा ही माना है। यह शेरशाह के समय में थे; क्योंकि इन्होंने अपने ग्रंथ में शेरशाह की वन्दना की है। उस समय शेरशाह दिल्ली के सम्राट् थे। इनकी लिखी तीन पुस्तकें पहले मिली थीं—पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम। इधर इनकी एक पुस्तक और मिली है। पद्मावत प्रबंध काव्य है। इसमें सिंहल द्वीप के राजा रत्नसेन तथा चित्तौड़ की रानी पद्मिनी का प्रेम-वर्णन है। बाहर से तो कथा में मानवी-प्रेम का वर्णन है, किन्तु जायसी ने आत्मा तथा परमात्मा के प्रति प्रेम का वर्णन किया है। कथा का आधार ऐतिहासिक है किंतु कवि ने उनमें कल्पना मिलाकर कथा बनायी है। उस युग में इस प्रकार की कथाएँ लिखी जाती थीं। ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं। ऐसे कवियों को प्रेममार्गी सूफी कवि कहते हैं। इस प्रकार के कवि सांसारिक प्रेम के बहाने ईश्वरीय प्रेम का वर्णन करते हैं।

यह कथा दोहों और चौपाइयों में लिखी है। इसकी भाषा भी ठेठ अवधी है। जायसी ने यह कथा अवधी में लिखकर उसे साहित्यिक रूप दिया और वह इस योग्य बनी कि आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने इसी भाषा के परिमार्जित स्वरूप में रामचरित-मानस लिखा। पद्मावत की कथा में कथा के सब गुण हैं। प्रेम, श्रद्धा और भक्ति के साथ-साथ लोक-हित की, वीर, रौद्र आदि भावनाएँ भी मौजूद हैं। कविता बहुत मधुर और मर्मस्पर्शिणी है।

यहाँ गोरा-बादल की कथा का अंश दिया जा रहा है। गोरा राजा रतनसेन का सामंत था। बादल उसका भतीजा था। जायसी ने उसे पुत्र माना है। गोरा और बादल छल से अलाउद्दीन के निवास स्थान पहुँचे और बन्दी राजा रतनसेन को छुड़ाया। गोरा-बादल की वीरता का जायसी ने बड़ा ओजपूर्ण वर्णन किया है।

## गोरा बादल की वीरता

पदमावति के भेस लोहारू, निकसि काटि वदि कीन्ह जोहारू।
उठा कोपि जस छूटा राजा, चढ़ा तुरंग सिंघ अस गाजा॥
गोरा बादल खांडे काढ़े, निकसि कुंवर चढ़ि चढ़ि भये ठाढ़े।
लेई राजा चितउर कहँ चले, छूटेउ सिंघ मिरिग खलभले॥
चढ़ा साहि, चढ़ि लाग गोहारी, कटक असूझ परी जग कारी।
फिरि गोरा बादल सौं कहा, गहन छूटि पुनि चाँहे गहा॥
चहुँ दिसी आवै लोपत भानू, अब इहै गोई, इहै मैदानू।
तुई अब राजहि लेइ चलु गोरा, हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा।

आजु खडग चौगान गहि, करौं सीस रिपु गोई।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत मँह होई।

तव आगमन होई गोरा मिला, तुइ राजहि लेइ चलु बादला।
पिता मरै जो संकरे साथा, मीचु न देइ पूत के माथा॥
मैं अब आउ भरी औ भूँजी, का पछिताव आउ जौ पूजी।
बहुतन्ह मारि मरौ जौ जूझी, तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी॥
कुंवर सहस संग गोरा लीन्हें, और बीर बादल संग कीन्हें।
गोरहि समदि मेघ अस गाजा, चला लिये आगे करि राजा॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा, पूरुष देखि चाव मन बाढ़ा।

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि मांझ।
परति आव जग कारी, होती आव दिन सांझ॥

फिरि आगे गोरा तब हांका, खेलौं, करौं आज रन साका।
हौं कहिये धौलागिरि गोरा, टरौं न टारे, अंग न मोरा।
सोहिल जैस गगन उपराहीं, मेघ-घटा मोहि देखि बिलाहीं।
सहसौं सीस सेस सम लेखौं, सहसौं नैन इन्द्र सम देखौं॥
चारिउ भुजा चतुर भुज आजू, कंस न रहा और को साजू।
हौं होइ भीम आजु रन-गाजा, पाछे घालि डुंगवै राजा॥
होइ हनुवंत जमकातर ढाहौं, आजु स्वामि सांकरे निबाहौं॥
होइ नल नील आजु हौं देहुँ समुद मह मेंड़।
कटक साह कर ढेकौं होइ सुमेरु रन बेड़॥
ओनई घटा चहूँ दिसि आई, छूटहिं बान मेघ झरि लाई।
डोलै नाहि देव जस आदि, पहुँचे आई तुरुक सब बादी॥
हाथन्ह गहे खड़ग हरदावनी, चमकहि सेल बीजु के बानी॥
सोझ बान जस आवहिं गाजा, वासुकि डरै सीस जनु बाजा॥
नेजा उठे डरै मन इंदू, आइ न बाज जानि के हिन्दू।
गोरै साथ लीन्ह सब साथी, जन मैमंत सूंड़ बिनु हाथी॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्हीं, आवत आइ हाँक रन दीन्हीं।
रुंड मुंड अब टूटहिं, स्यो बखतर औ कूंड़।
तुरय होहि बिनु कांधे, हस्ति होहि बिनु सूंड़॥
ओनवत आइ सेन सुलतानी, जानहुँ परलय आय तुलानी॥
लोहे सेन सूझ सब कारी, तिल इक कहूं न सूझ उघारी॥
खड़ग फौलाद तुरुक सब काढ़े, धरे बीजु अस चमकहिं ठाढ़े॥
पीलवान गज पेले बाँके, जानहुँ काल करहिं दुइ फांके॥
जनु जमकात करहिं सब भवाँ, जिउ लेइ चहहिं सरग अपसवाँ॥
सेल सरप जनु चाहहिं डसा, लेहिं काढ़ि जिउ मुख बिस-बसा॥
तिन्ह सामुहुँ गोरा रन कोपा, अंगद सरिस पांव भुंइ रोपा॥
सुपुरुष भागि न जानै, भुइं जौ फिरि-फिरि लेई।
सूर गहे साका कर, स्वामि-काज जिउ देई॥

भइ बग मेल, सेल घनघोरा, औ गज पेल, अकेल सो गोरा।
सहस कुंवर सहसौ सत बाँधा, भार पहार जूझ कर कांधा॥
लगे मरै गोरा के आगे, बाग न मोर घाव मुख लागे।
जैसे पतंग आगि धंसि लेई, एक मुवै दूसरे जिउ देई॥
टूटहिं सीस, अधर धर मारै, लोटहिं कंधहि कंध निरारै।
कोई परहिं रुहिर होइ राते, कोई घायल घूमहिं माते॥
कोई खुरखेह गए भरि भोगी, भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी।

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुंवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल॥

गोरै देख माथि सब जूझा, आपन काल नियर भा, बूझा।
कोपि सिंघ सामुंह रन मेला, लाखन्ह सो नहीं मरै अकेला॥
लेइ हांकि हस्तिन के ठटा, जैसे पवन बिदार घटा।
जेहि सिर देह कोपि करवारु, स्यों घोड़े टूटे असवारु॥
लोटहिं सीस कबंध निनारे, माठ मजीठ जनहुं रन ढारे।
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा, चांचरि खेलि आगि जनु लावा॥
हस्ती घोड़ धाई जो धूका, ताहि कीन्ह सो रुधिर भभूका।

भई अज्ञा सुलतानी, "बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ॥"

सबै कटक मिलि गोरहि, छेका, गूंजत सिंघ जाइ नहिं टेका।
जेहि दिसि उठै सोई जनु खावा, पलटि सिंघ तेहि ठांव न आवा॥
तुरुक बोलावहिं बोले बांहां, गोरे मीचु धरी जिउ माहां।
मुए पुनि जूझि जाज जगदेऊ, नियत न रहा जगत महुं केऊ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला, सिंघ के मोंछ हाथ को मेला॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा, मुए पाछ कोई घिसियावा॥
करैं सिंघ मुख सौहहिं दीठी, जो लगि जियै देइ नहिं पीठी।

रतनसेन जो बांधा, मसि गोरा के गात।
जो लगि रुधिर न धोवौ, तौ लगि होइ न रात॥

सरजा बीर सिंघ चढ़ि गाजा, आइ सौंह गोरा सौं बाजा।
पहलवान सो बखाना बली, मदद मीर हमजा औ अली ।।
लँघ उर धरा देव जस आदी, और को बर बाँधे, को बादी ?
मदद अयूब सीस चढ़ि कोपे, महामाल जेइ नाव अलोपे ।।
औ ताया सालार सो आए, जेइ कौरव पंडव पिंड पाए।
पहुंचा आइ सिंघ असवारू, जहाँ सिंघ गोरा बरियारू।।
मारेसि साँग पेट मंह धंसी, काढ़ेसि हुकुमि आँति भुईं खसी ।।

भांट कहा, धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आंति समेटि बांधि कै तुरय देत है पाव ।।

कहेसि अंत अब भा भुंइ परना, अंत त खसे खेह सिर भरना।
कहि के गरजि सिंघ अस धावा, सरजा सारदूल पहं आवा ।।
सरजै लीन्ह सांग पर धाऊ, परा खडग जनु परा निहाऊ।
बज्र के सांग बज्र कै डांडा, उठी आगि तस बाजा खांडा ।।
मानहु बज्र बज्रसौं बाजा, सबही कहा परी अब गाजा।
दूसर खडग कंध पर दीन्हा, सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा।
तीसर खड़ग कूंड पर लावा, कांध गुरुज हुत, घाव न आवा।

तस मारा हठि गोरै, उठी बज्र कै आगि।
कोइ नियरे नहिं आवै सिंघ सदूरहि लागि ।।

तब सुरजा कोपा बरिबंडा, जनहु सदूर केर भुजदंडा।
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा, जानहु परी टूटि सिर गाजा ।।
ठांठर टूट फूट सिर तासू, स्यो सुमेरु जनु टूट अकासू।
धमकि उठा सब सरग पतारू, फिरि गई दीठि, फिरा संसारू ।।
भई परलय अस सबही जाना, काढ़ा खडग सरग नियराना।
तस मारेसि स्यो घोड़े काटा, धरती फाटि, सेस फन फाटा ।।

गोरा परा खेत मँह, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान।

# मीरा

[सं० १५७३–१६०३]

मीराबाई जोधपुर राज्य के प्रतिष्ठाता राव जोधाजी की प्रपौत्री तथा रत्नसिंह राठौर की पुत्री थी। इनका विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज के साथ हुआ था। बचपन से ही इनकी भक्ति कृष्ण की ओर थी और उनकी पूजा-अर्चना में ही ये लीन रहा करती थीं। विवाह के थोड़े ही दिनों बाद इनके पति का परलोकवास हो गया। इसके पश्चात् इनकी भक्ति-भावना और भी बढ़ गई। अपने परिवार के लोगों की भी परवाह न करके ये सदा साधु-संतों के साथ मंदिर में भगवान कृष्ण की पूजा तथा अर्चना किया करती थीं। मूर्ति के सामने भक्ति में विह्वल होकर नाचती थीं। इनका यह आचरण राजकुल को अच्छा नहीं लगता था और इन्हें विष देने की भी चेष्टा की गई। किन्तु कहा जाता है कि इन पर विष का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। घर-वालों के व्यवहार से तंग आकर ये वृन्दावन तथा द्वारका चली गई और वहाँ मन्दिरों में कीर्तन करती थीं। वहाँ इनका सम्मान देवियों का-सा होता था। किंवदन्ती है कि इन्होंने तुलसीदास जी को एक पत्र लिख कर पूछा था कि घरवालों का ऐसा व्यवहार है, तो क्या करना चाहिए। अब तक मीराबाई के जन्म-मरण की तिथि का जो पता लगा है उससे यह घटना असत्य-सी जान पड़ती है, क्योंकि मीराबाई की मृत्यु संवत् १६०३ में हो चुकी थी।

इनकी कविता की भाषा ब्रज है जिसमें स्थल-स्थल पर गुजराती तथा राजस्थानी का समावेश है। इनके चार ग्रन्थों का नाम मिलता है। ये सब गेय पद हैं। इनकी भक्ति मधुरभाव की है। इन्होंने भगवान को पति के रूप में माना है। इनके पदों में भक्ति की तल्लीनता विशेष रूप से दिखाई देती है। इन्होंने वियोग शृङ्गार का बड़ा मार्मिक तथा मधुर वर्णन

किया है। ये सचमुच कृष्ण के प्रेम में दिवानी थीं और यह दिवानापन इनके प्रत्येक पद में झलकता है। इनकी गणना भारत के प्रधान भक्तों में है। इनकी कविताओं के संग्रह-मात्र मिलते हैं।

[ १ ]

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनि मूरत सांवरी सूरत नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल॥
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भगत बछल गोपाल॥

[ २ ]

मन रे परसि हरि के चरन।
सुभग शीतल कंवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन।
जिन चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरन॥
जिन चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरन।
जिन चरण ब्रह्माण्ड मेट्यो, नख सिख सिरी धरन॥
जिन चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम घरन।
जिन चरण काली नाग नाथ्यो, गोप लीला करन।
जिन चरण गोबरधन धारयो, इन्द्र को गरव हरन।
दासि "मीरा" लाल गिरधर, अगम तारनतरन॥

[ ३ ]

मैं गोविन्द के गुन गाना।
राजा रूठे नगरी राखै, हरि रूठयो कहं जाना।
राना भेजा जहर पियाला, अमरित करि पी जाना॥
डिबिया में भेज्या जु भुजंगम, सालिग्राम करि जाना।
"मीरा" तो अब प्रेमदिवानी, साँवलिया बर पाना॥

[ ४ ]

हरि तुम हरो मन की पीर।
द्रौपदी की लाज राख्यो तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारन रूप नरहरि धर्यो आप सरीर।।
हरिनकस्यप मारि लीन्हो धर्यो नाहिन धीर।
बूढ़ते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर।।
दास "मीरा" लाल गिरधर दुख जहाँ तहँ पीर।

[ ५ ]

म्हाने चाकर राखो जी, म्हाने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ।
बिन्द्रावन की कुंजगलिन में, तेरी लीला गासूँ।
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, बातां सरसी।।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गले बैजन्ती माला।
बिन्द्रावन में धेनु चरावे, मोहन मुरलीवाला।।
हरे हरे नित बन्न बनाऊँ, बिच बिच राखूँ क्यारी।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहर कुसुम्भी सारी।।
जोगी आया जोग करन कूं, तप करने संन्यासी।
हरी भजन कूँ साधू आया, विन्द्रावन का बासी।।
"मीरा के प्रभु गहिरा गंभीर, सदा रहोजो धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हें, प्रेम नदी के तीरा।।

[ ६ ]

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।

छाँड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।।
अँसुवन जल सीचि सीचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैलि गई आनन्द फल होई।।
भगति देखि राजि हुई जगत देखि रोई।
दासी 'मीरा' लाल गिरिधर तारो अब मोई।।

———

# गोस्वामी तुलसीदास

[ सं० १५५४-१६८० ]

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में सं० १५५४ में हुआ था। कुछ लोगों का ऐसा मत है कि ये सोरों में पैदा हुए थे; किन्तु अभी तक जो प्रमाण मिले हैं उनसे पहला मत ही अधिक ठीक जान पड़ता है। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम



हुलसी था। कहा जाता है कि ये मूल नक्षत्र में पैदा हुए थे अतः इनके पिता ने इन्हें त्याग दिया। बाबा नरसिंहदास ने इन्हें पाला-पोसा और शिक्षा दीक्षा दी। ये अपनी पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर बढ़ी नदी पार कर उससे जाकर मिले। स्त्री ने इनकी ताड़ना की जिससे इन्हें विरक्ति हो गई और ये काशी चले आये। इन्होंने बहुत तीर्थाटन किया था और देश-देशान्तर में घूमे थे। सं० १६३१ में इन्होंने अपना ग्रन्थ रामचरितमानस आरम्भ किया और दो साल सात महीने में उसे समाप्त किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, पार्वतीमंगल, जानकी-मंगल, रामलला-नहछू, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली लिखी है। ये रामानन्द सम्प्रदाय के स्मार्त वैष्णव थे। जीवन के अन्तिम भाग में ये काशी में ही रहते थे और यहीं संवत् १६८० में इनकी मृत्यु हुई।

तुलसीदास ने भारत के अनेक भागों में भ्रमण करके मनुष्य-समाज का तथा लौकिक ज्ञान बहुत प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त ये अनेक भाषाओं के पंडित थे और वेद-शास्त्र का भी ज्ञान रखते थे। इनके समय में कविता की दो भाषाएँ प्रचलित थीं—अवधी और ब्रज। इनका दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। अवधी भाषा का इन्होंने बड़ा संस्कार

किया और उसी में रामचरितमानस लिखा। इनके समय में कविता लिखने की पाँच शैलियाँ थीं। दोहा-चौपाई, कवित्त, सवैया, गीत, दोहा-छप्पय। इन्होंने भगवान राम की कथा रामचरितमानस में लिखी और कवित्त, सवैया में कवितावली लिखी। रामचरितमानस जिस ढंग का ग्रन्थ है उसे प्रबन्ध-काव्य कहते हैं। प्रबन्ध-काव्य में जिन गुणों की आवश्यकता होती है उन सबका इसमें सुन्दर ढंग से निर्वाह किया गया है। कथा-वर्णन की शैली, संवाद, भावों की व्यंजना सब ठीक नपे-तुले रक्खे गये हैं। तुलसीदास राम के भक्त थे। रामचरितमानस भक्ति का अनूठा ग्रन्थ है। भाषा तथा साहित्यिक सुन्दरता भी इसकी अपूर्व है। जहाँ जिस रस का वर्णन है वैसी ही भाषा है। यह ग्रन्थ धार्मिक, सामाजिक, शिक्षा, नीति और कर्त्तव्य-पालन का ज्ञानकोष है। भक्ति के साथ-साथ इस ग्रन्थ में लोकपक्ष का भी सुन्दर समन्वय है। भगवान रामचन्द्र को इन्होंने लोकनायक माना है जो संसार से बुराई हटाकर दुष्टों का नाश कर सुख और शान्ति स्थापित करते हैं। इस पुस्तक में सरल से सरल और गंभीर से गंभीर भाव मिलते हैं। अपढ़ और विद्वान् दोनों को इस ग्रन्थ में समान रस मिलता है। इस ग्रन्थ द्वारा शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों के झगड़ों को मिटाने की चेष्टा की गई है। यह ग्रन्थ भारतवर्ष में बहुत लोकप्रिय है। इसकी चौपाइयाँ लोगों की जबान पर रहती हैं। सभी दृष्टियों से तुलसीदास हिन्दी के बेजोड़ कवि हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ के द्वारा हिन्दू धर्म की बड़ी रक्षा और सेवा की है। सबसे बड़े साहित्यकार तो ये थे ही।

नीचे पहला अवतरण विनय के है, जिसमें तुलसीदास के आन्तरिक भाव प्रकट होते हैं। यह पद विनय-पत्रिका से दिया गया है। ४ पदों के बाद का अंश कवितावली से दिया गया है। यह उस समय की घटना है जब राम को वनवास की आज्ञा दे दी गई है और वे सीताजी तथा लक्ष्मण के साथ वन को चल रहे हैं। राजकुमार और राजकुमारी को वन में क्या कष्ट होता है, कैसे-कैसे लोग मिलते हैं, लोगों की इनके प्रति कितनी भक्ति थी, वन के निवासियों को इन्हें देखकर कितना कुतूहल

होता था सबका सुन्दर चित्र तुलसीदास ने खींचा है। भाषा मधुर तथा सरल है। इसके बाद का अंश रामचरितमानस से लिया गया है। यह उस समय की घटना है जब भगवान रामचन्द्र राजा जनक के यहाँ धनुष तोड़ने के लिये गये हैं। सब राजाओं की उपस्थिति है, बन्दीजनों ने सबका परिचय दिया है। राम को सुकुमार देखकर लोगों के हृदय में संशय होता है। सारा वर्णन बड़ा सजीव है। भाषा की मधुरता, स्वाभाविक अलंकार और मानव-स्वभाव का चित्रण इस अवतरण में सुन्दरता से व्यक्त किये गये हैं, साहित्य को कोमल भावनाएँ इसमें स्पष्ट हैं। इसके पश्चात् प्राकृतिक दृश्य वर्षा तथा शरद् ऋतु का है। वर्णन बहुत सजीव तथा सुन्दर है।

[ १ ]

कलि नाम काम तरु राम को।
दलनिहार दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को॥
नाम लेत दाहिनों होत मम बाम विधाता बाम को।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को॥
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित-ललाम को।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को॥

सेइए मुसाहिब राम सो।
सुखद, सुसील, सुजान, सूर, सुचि, सुन्दर कोटिक काम सो॥
सारद सेस साधु महिमा कहैं, गुन गन-नायक साम सो।
सुमिरि सप्रेम नाम जासो रति चाहत चन्द्र-ललाम सो॥
गमन विदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत प्रनाम सो।
साखी ताको विदित विभीषण बैठे है अविचल धाम सो॥
टहल सहज जन महल महल जागत चारों जुग जाम सो।
देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुन ग्राम सो॥
जाके भजे तिलोक-तिलक भये त्रिजग-जोनि तनु ताम सो।
तुलसी ऐसे प्रभुहि भजै जो न ताहि विधाता बाम सो॥

है प्रभु मेरोई सब दोषु।
सील सिन्धु कृपालु, नाथ, अनाथ-आरत पोषु॥
बेष, बचन, बिरागमन, अघ, अवगुननि को कोषु।
राम-प्रीति-प्रतीति पोली, कपट, करतब ठोसु॥
राग रंग कुसंग हो सो, साधु-संगति रोसु।
चहत के हरि-जसहि सेइ सृगाल ज्यो खरगोसु॥
संभु-सिखवन रसत हूँ नित रामनामहि घोसु।
दंभ हूँ कलि नाम-कुंभज सोच-सागर-सोसु॥
मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु।
रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोसु॥

मैं हरि पतित पावन सुने।
मैं पतित तुम पतितपावन, दोउ बानक बने॥
व्याध, गनिका, गज, अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ?
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो राखिए अपने॥

[ २ ]

कीर के कागर ज्यों नृपचीर-विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई॥
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥

[ ३ ]

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूडत काढे।
जो सुमिरे गिरि मेरु सिला कन होत अजाखुर बारिधि बाढे॥
तुलसी जेहि के पद पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरे अघ गाढे।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढे॥

[ ४ ]

एहि घाट ते थोरिक दूर अहै कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समझाइहौं जू॥
तुलसी अवलम्ब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिये मोहिं, बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढाइहौं जू॥

[ ५ ]

रावरे दोष न पायन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन ते बन बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायं पखारि के नाव चढाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥

[ ६ ]

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू वेद ना पढाइहौं।
सब परिवार मेरी याही लागि, राजा जू,
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढाइहौं।
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सो निषाद ह्वै के बाद न बढाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरो सौं, सांची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव ना चढाइहौं।

[ ७ ]

पुर ते निकसी रघुवीर वधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये अधराधर वै।
फिरि बूझति है चलनो अब केतिक, पर्णकुटी, करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियां अति चारुचली जल च्वै॥

[ ८ ]

वनिता बनी स्यामल गौर के बीच, विलोकहु री सखी, मोहि सों ह्वै।
मग जोग न कोमल, क्यों चलि है, सकुचान मही पद पंकज छ्वै ॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥

[ ९ ]

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता मनु जीत लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहै जटा, मुनि वेष कियो है ॥
संग लिये बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहै सकुचात हियो है ॥

[ १० ]

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौहैं।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्रामबधू सिय सों कहौ सांवरे से, सखि रावरे को हैं ॥

[ ११ ]

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने, सयानी है जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाई चली ॥
"तुलसी" तेहि अवसर सोहै सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसी मनो मंजुल कंज कली ॥

[ १२ ]

मुख पंकज, कंज विलोचन मंजु, मनोज सरासन सी बनी भौंहैं।
कमनीय कलेवर, कोमल, स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं ॥
तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठी परी तिरछौंहैं।
केहि भांति कहौं सजनी, तोहिसों, मृदु मूरति द्वै निवसी मनमोहैं ॥

## धनुष यज्ञ

चौ०-रामरूप अरु सियछवि देखी। नरनारिन्ह परिहरी निमेखी
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। विधिसन बिनय करहिं मनमाहीं
हरुविधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमार असि देहि सुहाई
बिनु विचार पन तजि नरनाहू। सीय राम कर करइ बियाहू
जग भल कहिहि भाव सबकाहू। हठ कीन्हें अंतहु उर दाहू
एहि लालसा मगन सब लोगू। बर साँवरो जानकी जोगू
तब वन्दीजन जनक बोलाये। बिरदावली कहत चलि आये
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हरष न थोरा

दोहा—बोले बन्दी बचनवर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल ॥

चौ०-नृपभुजबलु विधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सबकाहू
रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे
सोइ पुरारि कोदंड कठोरा। राज समाज आज जेहि तोरा
त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही
सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भट मानी अतिसय मन भाषे
परिकर बांधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन सिरु नाई
तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं। उठइ नकोटि भाँति बल करहीं
जिन्ह के कुछ बिचार मनमाहीं। चाप समीप महीप न जाहीं

दो०-तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट वाहु बल, अधिक अधिक गरुआइ ॥

चौ०-भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा
डगइ न सम्भु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे
सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिन बिराग सन्यासी
कीर्ति बिजय बीरता भारी। चले चापकर बरबस हारी

श्रीहत भये हारि हिय राजा। बैठे निज-निज जाइ समाजा
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने
दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा

दो॰—कुँअरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय॥

चौ॰-कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न संकरचाप चढ़ावा
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सके छुड़ाई
अब जनि कोउ भाखइ भटमानी। बीरबिहीन मही मैं जानी
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि वैदेहि बिबाहू
सुकृत जई जौ पन परिहरऊं। कुँअरि कुँवारि रहइ का करऊं
जौ जनतेउँ विनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई
जनक बचन सुनि सब नरनारी। देखि जानकिहि भये दुखारी
माखे लखन कुटिल भइ भौहें। रदपट फरकत नयन रिसौहें

दो॰-कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिर, बोले बचन प्रमान॥

चौ॰-रघुबंसिन्ह महँ जहँकोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई
कही जनक जस अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमनि जानी
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउं सुभाव न कछु अभिमानू
जौं तुम्हार अनुसान पावउं। कन्दुक इव ब्रह्मांड उठावउं
काँचे घट जिमि डारउं फोरी। सकउ मेरु मूलक इव तोरी
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना
नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करउं बिलोकिय सोऊ
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावउँ। जोजन सत प्रमान लेइ धावउँ

दो॰-तोरउँ छत्रकदंड जिमि, तव प्रतापबल नाथ।
जौ न करउं प्रभु पद सपथ, कर न धरउं धनु हाथ॥

चौ०-लखन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि डिग्गज डोले
सकल लोक सब भूप डेराने। सियहिय हरष जनक सकुचाने
गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं
नयनहिं रघुपति लखन निवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा
सुनि गुरुबचन चरन सिरु नावा। हरष विषाद न कछु उर आवा
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये। ठवनि जुआ मृगराज लजाये

दो०—उदित उदय-गिरि मंच पर, रघुबर बालपतंग।
बिगसे संतसरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥

चौ०-नृपन्ह केरि आसा निसिनासी। बचन नखत अवली न प्रकासी
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने
भये बिसोक कोक मुनि देवा। बरसहिं सुमन जनावहिं सेवा
गुरुपद बन्दि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा
सहजहि चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भये सुखारी
बंदि पितर सब सुकृत संभारे। जौ कछु पुन्य प्रभाव हमारे
तो सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहिं राम गनेस गोसाईं

दो०—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीतामातु सनेह बस, बचन कहइ बिलखाइ॥

चौ०-सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ए बालक असि हठ भल नाहीं
रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा
सो धनु राजकुँअरि कर देहीं। बालमराल कि मन्दर लेहीं
भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधिगति कहि जाति न जानी
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवन्त लघु गनिय न रानी

कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ सुजस सकल संसारा
रविमंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा

दो०—मन्त्र परम लघु जासु बस, बिधि-हरि-हर सुर सर्ब।
महा मत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुस खर्ब॥

चौ०-काम कुसुम धनु सायक लीन्हें। सकल भुवन अपने बस कीन्हें
देवि तजिय संसय अस जानी। भंजब धनुष राम सुनु रानी
सखी बचन सुनि भइ परतीती। मिटा विषाद बढ़ी अति प्रीती
तब रामहिं बिलोकि वैदेही। सभय हृदय विनवति जेहि तेही
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी
करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चापगरुआई
गननायक बरदायक देवा। आजु लगे कीन्हेउँ तव सेवा
बार बार सुनि विनती मोरी। करहु चापगरुता अति थोरी

दो०—देखि देखि रघुबीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेमजल, पुलकावली सरीर॥

चौ०-नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितुपनुसुमरिबहुरि मनछोभा
अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी
सचिब सभय सिख देइ न कोई। बुध समाजबड़ अनुचित होई
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा
विधि केहि भाँति धरउं उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिय हीरा
सकल सभा कै मति भइ भोरी। अब मोहि संभु चाप गति तोरी
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी
अति परिताप सीय मन माहीं। लवनिमेष जुगसय सम जाहीं

दो०-प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधुमंडल डोल॥

चौ०-गिरा अलिनी मुखपंकज रोकी। प्रकट न लाज निसा अवलोकी॥
लोचनजल रह लोचनकोना। जैसे परम कृपन कर सोना॥
सकुची व्याकुलता बढ़ि जानी। धरि धीरज प्रतीत उर आनी॥
तन मन बचन मोर पन साचा। रघुपति पदसरोज चितु राचा॥
तौ भगवान सकल उर वासी। करिहहि मोहि रघुबर कै दासी॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु सन्देहू॥
प्रभु तन चितइ प्रेमपन ठाना। कृपानिधान राम सब जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे॥

दो०--लषन लखेउ रघुबंसमनि, ताकेउ हर कोदंड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मंड॥

चौ०-दिसिकुंजरहु कमल अहिकोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
राम चहहि संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥
चाप समीप राम जब आये। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाये॥
सब कर संसय अरु अज्ञानू। मन्द महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिवरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचि जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥
संभु चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई॥
राम बाहु बल सिंधु अपारू। चहत पार नहिं कोउ कनहारू॥

दो०—राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल बिसेखि॥

चौ०-देखी विपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुये करइ का सुधा तड़ागा॥
का बरषा जब कृषी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने॥
अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेखी॥
गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडलसम भयऊ॥

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढे
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा

छंद-भरे भुवन घोर कठोर रव रबिबाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

सो०-संकरचाप जहाज, सागर रघुबर बाहु बल।
बूड़ सो सकल समाज, चढ़ें जो प्रथमहिं मोह बस ॥

चौ०-प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भये सुखारे
कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेमबारि अवगाह सुहावन
राम रूप राकेस निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी
बाजे नभ गहगहे निसाना। देव बधू नाचहिं करि गाना
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहिं प्रसंसहि देहिं असीसा
बरषहि सुमन रंग बहु माला। गावहिं किन्नर गीत रसाला
रही भुवन भरि जब जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेहु राम संभु धनु भारी

दो०-बंदी मागध सूतगन, बिरद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोगसब, हयगय मनि धन चीर ॥

चौ०-झांझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई
बाजहिं बहु बाजने सुहाये। जँह तहँ जुवतिन मंगल गाये
सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी। सूखत धान परा जनु पानी
जनक लहहु सुख सोच बिहाई पैरत थके थाह जनु पाई
श्रीहत भये भूप धनु टूटे। जैसें दिवस दीप छबि छूटे
सीय सुखहि बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलस्वाती
रामहिं लषन बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरकु जैसे
सतानन्द तब आयसु दीन्हा। सीता गमन राम पहि कीन्हा

दो०–संग सखी सुन्दर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार ॥

## वर्षा वर्णन

चौ०-सुन्दर वन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप निकर मधु लोभा
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई
कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति विरति नृप नीति विवेका
वरषा काल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये

दो०–लछिमन देखहु मोर गन, नाचति वारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, विष्णु भगत कहँ देखि ॥

चौ०–घनघमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा
दामिनि दमकि रह न घन माहीं। खल की प्रीति जथा थिर नाहीं
बरसहि जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं बुध विद्या पाये
बुंद अघात सहहि गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई
भूमि परत भा ढावर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी
सिमिटि सिमिटि जल भरहि तलावा। जिमि सद्गुन सज्जन पहँ आवा
सरिता जल जलनिधि महं जाई। होय अचल जिमि जिव हरि पाई

दो०—हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहि नहिं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद ते, लुप्त होहिं सदग्रंथ ॥

चौ०--दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई
नव पल्लव भे विटप अनेका। साधन मन जस मिले विवेका
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी की संपति जैसी
निसि तम घन खद्योत विराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा

महा वृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मनमाना
देखिए चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाय जिमि धर्म पराहीं
ऊसर बरषई तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा
विविध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाय सुराजा
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ज्ञाना

दो०–कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कुपूत के जन्म ते, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥
कबहुँ दिवस महँ निविड तम, कबहुँक प्रकट पतंग।
विनसै उपजइ ज्ञान जिमि, पाय कुसंग सुसंग ॥

———

# रहीम

## [ सं० १६१०-१६८३ वि० ]

रहीम अकबर के अभिभावक बैरम खाँ के पुत्र थे। इनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम था। खानखाना उपाधि मिली थी। रहीम अथवा रहिमन कविता में लिखा करते थे। आप हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अरबी के पण्डित थे, कविता तथा कवि-प्रेमी थे, परोपकारी थे। बहुत अच्छे सैनिक वीर और साहसी सेनापति तथा कुशल शासक थे। लाखों रुपये आपने कवियों को दान दिये। अकबर के प्रियपात्र थे। अनेक लड़ाइयों में आपने विजय प्राप्त की थी। आपके आश्रित भी अनेक कवि थे। यह बाद में जहाँगीर के विरुद्ध हो गये थे। इससे यह बन्दी कर लिये गये थे और इनकी जागीर छीन ली गई थी। बाद में क्षमा मिल गयी। इन्होंने रहीम सतसई, बरवै नायिकाभेद, शृंगार सोरठ, मदनाष्टक तथा रास पंचाध्यायो पुस्तकें लिखी हैं। फुटकल रचनाएँ भी इनकी कुछ मिलती हैं।

रहीम की कविताएं ब्रज तथा अवधी भाषाओं की हैं। आपका इन दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है। इन्होंने जो कुछ लिखा सबमें निज अनुभव की छाप है। इनकी रचनाओं में कोरी कल्पना नहीं है। यही कारण है कि इनकी रचनाएँ लोकप्रिय हैं और लोगों की जबान पर हैं। शब्दों की मिठास, और भावों की सचाई के कारण रचनाएँ हृदय-स्पर्शी है। यह मुसलमान थे; किन्तु रचानाओं से पता नहीं चलता। कहीं इनकी उपमाओं से या किसी और स्थल से विदेशी संस्कृति की झलक नहीं पड़ती। सब कथाएँ, सन्दर्भ भारतीय हैं। इसी देश की घटनाओं की ओर संकेत किया गया है।

यहाँ रहीम के नीति के दोहे दिये गये हैं। कवि ने थोड़े में अधिक बात कहने का सफल प्रयास किया है। उनमें जो शिक्षा मिलती है वह सत्य है। ऐसे दृष्टान्तों से कवि अपनी उक्तियों की पुष्टि करता है जो शाश्वत सत्य है। शब्द ऐसे चुन-चुन कर रखे गये हैं जो कर्ण-प्रिय हैं। कला की दृष्टि से और नीति की शिक्षा की दृष्टि से भी दोहे हमारी हिन्दी की निधि हैं।

## रहीम

अच्युत चरन तरंगिनी, शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव भाल॥ १॥

खैंचि चढनि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति।
आज काल मोहन गही, बंस दिया की रीति॥ २॥

धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पतनी तरी, सो ढूँढत गजराज॥ ३॥

पसरि पत्र झपहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत॥ ४॥

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथिहि हहरि कै, दिए दाँत द्वै काढ़ि॥ ५॥

भलो भयो घर ते छुट्यों, हस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अपने पेट के हेत॥ ६॥

मन सो कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान॥ ७॥

रहिमन अपने पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाए रहे, तोसों को अनखाय॥ ८॥

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥ ९॥

रहिमन कबहुँ बडेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरै संसार को, तऊ कहावत सेस ॥१०॥

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥११॥

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बडरी अखिया निरखि, आँखिन को सुख होत ॥१२॥

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥१३॥

रहिमन रिस सहि तजत नहि, बड़े प्रीति की पौरि।
मूकन मारत आवई, नींद विचारो दौरि ॥१४॥

बिरह रूप घन तुम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादो निसा, चमकि जात खद्योत ॥१५॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥१६॥

———

# बिहारी

[सं० १६६०–१७२०]

बिहारी लाल चौबे माथुर ब्राह्मण थे और ग्वालियर के पास बसुवा-गोविन्दपुर ग्राम में पैदा हुए थे। बाल्यावस्था भर बुन्देलखण्ड में रहे, जवानी में अपनी ससुराल मथुरा में। यह जयपुर के यशराज मिर्जा राजा जयसार रावराज जयसिंह के आश्रय में रहते थे। महाराज के कहने पर इन्होंने दोहे लिखे जो लगभग सात सौ हैं। इनके दोहों का संग्रह सतसई के नाम से विख्यात है। प्रत्येक दोहे पर १२ अशरफी पुरस्कार महाराज ने इन्हें दिया था। इनके दोहे बहुत गंभीर हैं। दर्जनों टीकाएँ इन दोहों पर बन चुकी हैं और नित्य बनती जा रही हैं। प्रत्येक दोहे में गूढ़ भाव भरे हैं। थोड़े में बहुत भाव भर दिये गये हैं। इन दोहों की साहित्यिक महत्ता इससे समझी जा सकती है कि इसके अनुवाद संस्कृत, उर्दू तथा अन्य भाषाओं में भी हो चुके हैं।

इनकी भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है। सूर के बाद प्रांजल ब्रजभाषा इन्होने लिखी है। इनके दोहों में लालित्य और माधुर्य भरा पड़ा है। पदावली भावपूर्ण तथा संगठित है। फारसी के शब्दों का भी इन्होंने व्यवहार किया है। अलंकारों का बाहुल्य है और प्रायः सभी दोहों में चमत्कार है। इनका हृदय पर प्रभाव भी गहरा पड़ता है। अधिकांश दोहे श्रृंगारिक हैं। किन्तु कुछ दोहे भक्ति के भी इन्होंने कहे हैं। वह भी बहुत सुन्दर हैं। साहित्यिक दृष्टि से बिहारी के दोहों का स्थान बहुत ऊँचा है। जो बात और जितनी बात अनेक कवि छंदों में नहीं कह सके उसे बिहारी ने एक दोहे में कह डाला है। किसीने इनकी प्रशंसा में ठीक कहा है—

सत सैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर॥

## बिहारी लाल

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होइ ॥१॥

कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति विदारनहार ॥२॥

मकराकृति गोपाल कै सोहत कुंडल कान।
धर्‍यौ मनौ हिय घर समरु, ड्योढी लसत निसान ॥३॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझे नहिं कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै स्याम रंग, त्यौं-त्यौं उज्ज्वल होइ ॥४॥

जपमाला, छापा, तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचै काँचै वृथा, साँचै राँचै रामु ॥५॥

घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचत जाइ।
दियै लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बडौ लखाइ ॥६॥

मोहन मूरति स्याम को अति अद्‌भुत गति जोई।
वसतु सुजित अन्तर तऊ प्रतिबिंबत जग होई ॥७॥

बड़े न हूजै गुनन बिनु विरद बड़ाई पाइ।
कहत धतूरै सौं कनक, गहनौ गढ्यो न जाइ ॥८॥

तजि तीरथ, हरि राधिका तन दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग, पग पग होतु प्रयागु ॥९॥

कीजै चित सोई, तरे जिहि पतितनु के साथ।
मेरे गुन औगुन गनत, गनौ न गोपीनाथ ॥१०॥

हरि, कीजति विंनती यहै, तुम सौं वार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्‍यौ रह्यौ, पर्‍यौ रहौ दरबार ॥११॥

गिरि तै ऊँचै रसिक मन, बूड़े जहाँ हजारु।
वहै सदा पसु नरन कौ, प्रेम पयोधि पगारु ॥१२॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब, अलि रही गुलाब में अपत कंटीली डार ॥१३॥

स्वारथ सुकृत न, श्रमु वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि तू पच्छिन न मारि ॥१४॥

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल ॥१५॥

नल की अरु नल नीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥१६॥

बढत बढत संपति सलिल, मन सरोज बढि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुह्मलाइ ॥१७॥

कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचै चढ़ै, अंत नीच कौ नीच ॥१८॥

गुनी गुनी सबकै कहैं निगुनो गुनी न होत।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं, अरक समान उदोत ॥१९॥

दुसह दुराज प्रजानु कौ, क्यौं न बढ़ै दुख दंद।
अधिक अंधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चंद ॥२०॥

यह वरिया नहि और की, तूं करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाइ नहिं, कीनै पार पयोधि ॥२१॥

मोर मुकुट की चंद्रिकनु, यो राजत नंद नन्द।
मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चंद ॥२२॥

अधर धरत हरि कै परत, ओंठ डीठि-पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्र धनुष रंग होति ॥२३॥

कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयानो लोग।
तीन दबायत निकसहीं, पातक, राजा, रोग ॥२४॥

को कहि सकै बडैनु सौं, लखैं बडीयौ भूल।
दीनी दई गुलाब की, इन डारनु वे फूल ॥२५॥

दिन दस आदरु पाइकै, करि लै आपु बखान।
जौ लगि काग सराधपख, तौ लगि तौ सनमान ॥२६॥

मातु प्यास पिंजरा पर्यो, सेआ समै के फेर।
आदरु दै दैं बोलियतु, वाइसु बलि को वेर ॥२७॥

इही आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कै मूल।
ह्वै हैं फेरि वसंत ऋतु, इन डारिन वे फूल ॥२८॥

वे न इहाँ नागर, बड़ो, जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गंवई गाँव गुलाब ॥२९॥

मूड चढ़ाए ऊ रहै, पर्यौ पीठि कच भारु।
रहै गरै परि राखिवौ, तऊ हियै पर हारु ॥३०॥

इक भीजैं, चहलै परैं, वूड़ैं, बहैं हजार।
किते न औगुन जग करैं, वय नय चढ़ती वार ॥३१॥

मीत न नीति गलीतु ह्वै, जौ धरिये धनु जोरि।
खाए खरचै जो जुरै, तो जोरिये करोरि ॥३२॥

कहलाने एकत बसत, अहि, मयूर, मृग, बाघ।
जगत तपोवन सौ कियौ; दीरघ दाघ निदाघ ॥३३॥

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी गंध।
ठौर ठौर झौरत झपत, मौर भौर मधु अंध। ३४॥

लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥३५॥

चितु दै देखि चकोर त्यौ, तीजै भजे न भूख।
चिनगी चुनै अंगार की, चुगे कि चन्द मयूख ॥३६॥

बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चित खरौ सकातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनै लोग उतपातु ॥३७॥

ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होंहि न नैंकहूँ फारि निहारैं नैन ॥३८॥

किती न गोकुल कुलवधू, किहि न काहि सिख दीन।
कौने तजी न कुलगली, ह्वै मुरली सुर लीन ॥३९॥

इन दुखिया अँखियानु कौं सुख सिरज्योई नाहिं।
देखैं बनैं न देखतैं, बिन देखैं अकुलाहिं ॥४०॥

चिरजीवौ जोरि जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥४१॥

———

# रसखानि

रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। इनके जन्म तथा मरण की ठीक तिथि अज्ञात है। इतना पता है कि यह गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य हो गये थे और इनका रचनाकाल संवत् १६४० के लगभग है। यह प्रेम के दीवाने थे और कृष्ण के सच्चे भक्त थे। इसीलिये वैष्णव होकर व्रज में ही रहने लगे थे। इन्होंने कवित्त तथा सवैयों के माध्यम से अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी भाषा सरल, सरस, सुन्दर और तुरन्त हृदय पर प्रभाव डालने वाली है। रचनाएँ प्रेम की भावना से सराबोर है। इन्होंने बहुत नहीं लिखा है, किन्तु जितना लिखा है वह रस से परिपूर्ण है। दो संग्रह इनके प्रकाशित हुए हैं। 'प्रेमवाटिका' जिनमें दोहों का संग्रह है और 'सुजान रसखान' में कवित्त तथा सवैये हैं। इनकी रचना में भाषा का सौंदर्य तो है ही, साथ ही साथ भावों की बहुत सुन्दर व्यंजना है। भगवान् कृष्ण के लीला पक्ष को लेकर इन्होंने रचना की है।

( १ )

सेस, गनेस, महेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर ध्यावें।
जाहि अनादि, अनन्त, अखंड, अछेद, अभेद सुवेद बतावें॥
जाहि हिये लखि आनन्द ह्वै, जड़ मूड़ हिये 'रसखानि' कहावें।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछि पै नाच नचावें॥
धूरि भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरे अँगना, पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी॥
या छवि को 'रसखानि' बिलोकत, वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि-हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥

मानुष हौं तो वही 'रसखानि', बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं, मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन॥
या लकुटी अरु कामरिया पहँ, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक या कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

---

# नरोत्तमदास

नरोत्तमदास सीतापुर जिले के बाडी ग्राम के रहनेवाले थे। इनके जन्म-मरण के सम्बन्ध में कुछ मालूम नहीं है। इनका सुदामाचरित्र बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें अपने सहपाठी श्रीकृष्ण के यहाँ सुदामा के जाने और फिर इन्हें भगवान के वैभव प्रदान करने का वर्णन है। इनकी रचना सरल परिमार्जित ब्रजभाषा में है। इन्होंने दरिद्रता का बड़ा सजीव वर्णन किया है।

यह अवतरण "सुदामाचरित्र" से लिया गया है। अपनी स्त्री के बारंबार कहने से सुदामा द्वारका जाते हैं। वहाँ का वैभव देखकर वे घबरा जाते हैं। श्रीकृष्ण के महल में जाकर द्वारपाल से संदेशा कहलाते हैं। द्वारपाल भीतर जाकर बताता है।

इसमें मित्रता की मर्यादा का बहुत सुन्दर निर्वाह किया गया है। वर्णन में मनुष्य की मनोवृत्ति का सजीव चित्रण है।

नरोत्तमदास की शैली बड़ी मीठी, हृदयग्राहिणी और प्रसाद गुण पूर्ण है।

## सुदामा-चरित्र

दीठि चकचौंधि गई देखत सुबर्नमई।
एक ते सरस एक द्वारिका के भौन हैं॥
पूछे बिन कोऊ कहूँ काहू सो न करै बात।
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं॥
देखत सुदामै धाय पौरजन गहे पाय।
कृपा करि कहौ विप्र कहाँ कीन्हों गौन हैं॥
धीरज अधीर के, हरन पर पीर के,
बताओ बलबीर के महल यहाँ कौन हैं॥

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी, अरु पांय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि, रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥

बोल्यो द्वारपाल सुदामा नाम पांडे सुनि,
छांड़े राज काज ऐसे जो की गति जानै को
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय
भेटे लपटाय करि ऐसे दुख सानै को
नैन दोऊ जल भरि पूँछत कुसल हरि,
विप्र बोल्यो विपदा में मोहि पहिचानै को
जैसी तुम कीन्हीं तैसी करै को कृपा के सिन्धु
ऐसी प्रीति दीनबन्धु, दीनन सो मानै को।

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग, कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महादुख पायो सखा, तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोये।
पानि परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के जल सो पग धोये॥

कांपि उठी कमला मन सोचन, मोसो कहा हरि को मन औं को।
रिद्धि कँपी सब सिद्धि कँपी, नव निद्धि कँपी बम्हना यह धौं को॥
सोच भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लियो भरि झौंको।
मेरु डर्‌यो "बकसै जनि मोहिं" कुबेर चबावत चाउर चौंको॥

भौन भरे पकवान मिठाइन, लोग कहैं निधि हैं सुषमा के।
साँझ सबेरे चितै अभिलाषत, दाख न चाखत सिंधु रमा के॥
बाभन एक कोऊ दुखिया सेर पावक चाउर लायो समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिए, तेहि बैठि चबात है कन्त रमा के॥

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तूमनै चित धारी।
तंदुल खाय मुठी दुई दीन कीयो तुमने दुइ लोक बिहारी॥

खाइ मुठी तिसरे अब नाथ कहाँ निज बास की आस बिचारी।
रंकहि आप समान कियो तुम, चाहत आपहि होन भिखारी।
धन्य कहा कहिए द्विज जू तुम सो जग कौन उदार प्रबीनो।
पाछिली प्रीति निबाही भली विधि, दोष निखारि कै रोष न कीनो।
हौं द्विज के चरनादक हेतु, अजन्म कहाय कै जन्म सु लीनो।
आवन कै निज पावस सो यहाँ मो सो अपावन पावन कीनो।
वैसई राज समाज दई, गज बाजि घने मन संभ्रम छायो।
कैधौं पर्‌यो कहु मारग भूलिकै, कै अब फेरिहौ द्वारिकै आयो॥
भौन बिलोकिबे को मग लोचन सोचन ही सब गाँव मझायो।
पूछि भे पांडे कथा सब सो, फिरि झोपरि को कहुँ सोधु न पायो॥

टूटी सी मडैया मेरी परी हुती याही ठौर।
तामे परा दुःख काँटो कहाँ हेम धाम री॥
जेवर जराऊ तुम साजे प्रति अंग अंग।
सखी सोहैं संग वह छूछी हुती छामरी॥
तुम तौ पटंबर री ओढे हौ किनारीदारी।
सारी जरतारी वह ओढे कारी कामरी॥
मेरी वा पडाइन तिहारी अनुसार ही पै।
विपदा सताई वह पाई कहाँ पामरी॥

कै वह टूटी सी छानी हुती, कह कंचन के सब धाम सुहावन।
कै पग में पनही न हुती, कहँ लै गजराजहु ठाड़े महावत।
भूमि कठोर पै रात कटै, कह कोमल सेज पै नींद न आवत।
कै जरतो नहि कोदो सवाँ, प्रभु के परताप ते दाख न भावत॥

---

# भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

[ सं० १९०७-१९४१ ]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र काशी के विख्यात वैश्यकुल में उत्पन्न हुए थे। आपके पिता भी व्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि थे। आप बहुत बड़े दानी, साहित्य-प्रेमी तथा विद्वानों के संरक्षक थे। दान में आपने अपनी सारी सम्पत्ति फूँक दी। कवियों और साहित्यकारों का आपके यहाँ जमघट लगा रहता था। आप स्वयं तो कवि तथा नाटककार थे ही, आपकी प्रेरणा से बहुत से लेखक, कवि आदि हो गये जिन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की रचना करके हिन्दी की वृद्धि की है।

पहला दोहा भारतेन्दु ने पाँच साल की अवस्था में कहा था। आप वर्तमान हिन्दी-गद्य के प्रवर्तक हैं। हिन्दी में वर्तमान युग के नाटकों के पहले निर्माता आप ही हैं। आप कवि भी बहुत ऊँची श्रेणी के थे। चौंतीस साल की ही अवस्था में हिन्दी में पचासों ग्रन्थ, नाटक, कविता, गद्य, आपने लिख डाले। आपने खड़ी बोली में भी कविता की है। किन्तु आपकी अधिकांश रचना व्रजभाषा की है। आपकी व्रजभाषा बड़ी सरल, मधुर और रसपूर्ण है। आपकी कविताएँ प्रेम तथा भक्ति सम्बन्धी हैं। आपने रचनाओं में भावों को खूब भरा है।



यहाँ जो अवतरण दिया जाता है उनमें दो तो उनकी भक्ति की रचनाएँ हैं जिनमें उन्होंने भगवान से प्रार्थना की है। एक नारद की वीणा की प्रशंसा में है। अन्तिम रचना उस समय की है, जब राजा हरिश्चन्द्र काशी में बिकने आये हैं। उस समय कवि काशी का वर्णन करता है। काशी में गंगा की उत्पत्ति, उसका वैभव, नगर के घाट की शोभा

दिखाई गई है। वर्णन बहुत सजीव और हृदयग्राही है। पद्माकर के वर्णन में भक्ति-भावना अधिक है, हरिश्चन्द्र के वर्णन में प्राकृतिक छटा भी है। यह उनके नाटक सत्य हरिश्चन्द्र से लिया गया है।

## हरिश्चन्द्र

### पद

भरोसो रीझन ही लखि भारी।
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित उधारी ।।
जो ऐसो सुभाव नहीं होतो क्यों अहीर कुल भायो।
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा हार धरायो ।।
कीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धार्यौ।
फेंट कसा टेंटिन पै मेघन की क्यों स्वाद बिसार्यो ।।
ऐसी उल्टी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस।
जगनिंदित हरिचंदहु को अपनावहिंगे करि दास ।।१।।

रहै क्यों एक म्यान असि दोय।
जिन नैनन में हरि रस छायो तेहि क्यों भावै कोय ।।
जा तन मन रमि रहे मोहन तहाँ ज्ञान क्यों आवै।
चाहो जितनी बात प्रबोधो ह्याँ को जो पतियावै ।।
अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरत जा भूलै।
हरिचंद ब्रज तो कदलीबन काटौ तौ फिरि फूलै ।।२।।

## गंगा छबि

नव उज्ज्वल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति ।।
लाल लहर लहि पवन एक पे इक इमि आवत।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत।
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ।।

श्रीहरि पद नख चन्द्रकांत मनि द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमंडल मंडन, भव खंडन सुर सरबस॥
शिव सिर मालति माल, भगीरथ नृपति पुन्य फल।
ऐरावत गज गिरि पति हिम नग कंठहार कल॥
सगर सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण।
अगिनित धारा रूप धारि सागर संचारण॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेट्यो उठि धाई।
सपने हूँ नहिं तज्यो रही अंकन लपटाई॥
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौवत बजत, कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ योगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुन्दरी नहात वारि कर जुगल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवति सुन्दर बदन करन अति ही छवि पावत।
बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत॥
सुन्दरि ससिमुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहाँ जहँ जात रहत तित ही ठहराई।
गंगा छबि हरिचन्द कछू बरनी नहि जाई॥

# दीनदयाल गिरि

## [ सं० १८५६-१९१५ ]

बाबा दीनदयाल गिरि गोसाइँ परिवार में काशी में पैदा हुए थे। वे हिन्दी और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। वे बड़े सहृदय और भावुक कवि थे। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें अनुरागबाग तथा अन्योक्ति-कल्पद्रुम प्रमुख हैं। इनकी अन्योक्तियों के भाव अधिकांश संस्कृत से लिये हुए हैं। इसकी सरलता तथा मनोहरता ऐसी है कि मौलिक-सी हो गई हैं। इनकी भाषा बड़ी परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित है। इनकी अन्योक्तियाँ बड़ी भावुकता से कही गई हैं। इन्होंने लौकिक विषयों पर अधिकांश अन्योक्तियाँ लिखी हैं, अध्यात्म पक्ष में भी कुछ लिखी हैं। कहीं-कहीं इन्होंने पदों में श्लोक का व्यवहार किया है। वहाँ इनकी कला का सौन्दर्य है। कहीं-कहीं केवल भावों का सौन्दर्य है। ये दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट कवि हैं।

### अन्योक्तियाँ

दानी अमरित के सदा वेद करैं गुनगान।
सुनी चंद बंदे तुमैं मोद-निधान जहान॥
मोद-निधान जहान संभु सिर ऊपर धारैं।
देखि सिंधु हरखाय निकाय, चकोर निहारैं॥
बरनै दीनदयाल सबै को तुम सुखदानी।
एक चोर बरजोर घोर नदैं दुखदानी॥
दीजै जीवन जलद जू दीन द्विजन को देखि।
इनको आसा राखी [illegible] अहै बिसेखि॥

भागी अहै बिसेखि देहु कुल कीरति छैहै।
या चपला है चला लला धौं कित को जैहै ॥
बरनै दीनदयाल आप जग में जस लीजै।
परम धरम उपकार द्विजन को जीवन दीजै ॥

करिए सीतल हृदय बन सुमन गयो मुरझाय।
सुनो विनय घनस्याम हे सोभा सघन सुहाय ॥
सोभा सघन सुहाय कृपा की धारा दीजै।
नीलकंठ प्रिय पालि सरस जग में जस लीजै ॥
बरनै दीन दयाल तृषा द्विजगन की हरिए।
चपला सहित लखाय मधुर सुर कानन करिए ॥

रतनाकर महि माँह तुम अति अथाह गंभीर।
हैं प्रवाह दुस्तर भरे ग्राह प्रबल तो नीर ॥
ग्राह प्रबल तो नीर तीर पैठत बुध हारे।
धीर न रहै सरीर तरंग निहारि तिहारे ॥
बरनै दीन दयाल जौन मरजीवा जाकर।
लै मुकुतन को कढ़ै सोइ धनि हे रतनाकर ॥

जेतो फल तैं नमत हौ एहो धीर रसाल।
तेतो ऊँचे होत हौ सोभा होति बिसाल ॥
सोभा होति बिसाल बात तब है सुखदायक।
रस तें करो निहाल तुम्हें सेवैं द्विजनायक ॥
बरनै दीनदयाल हिये हरि सों हित केतो।
धरे रहै छबि स्याम नमित रस देखौ जेतो ॥

नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चार की बहुरि कटीली डार ॥

झुरि करीली डार होहिंगी ग्रीखम आये।
लुवै चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताये॥
बरनै दीनदयाल फूल जौलौं तो पाहीं।
रहे घेरि चुह फेरि, फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥
कोकिल लोचन ललित कर करिय न कोप बिखाद।
भयो कि मूढ द्रवो न जो सुनि कै पंचम नाद॥
सुनि कै पंचम नाद द्रवैं सुर-चतुर विवेकी।
ते न द्रवै जिहि लगै सुखद बानी कौवे की॥
बरनै दीनदयाल लगै प्रिय साँपिन को खिल।
कहा करैं ते रंग मौन सुनिए हे कोकिल॥
अँचयो कुंभज नीरनिधि जो सिध बड़े कहात।
तुम जग-जीवन-निधि-निकर सीकर सम चढ़ि जात॥
सीकर सम चढ़ि जात लोभ तव प्यास न जाई।
तुम अकास ऋषि रेनु कहा तिन केरि बड़ाई॥
बरनै दीनदयाल लोक तिहुँ ग्रसिकै पचयो।
तऊ भूख नहिं प्यास गई सत सागर अँचयो॥

———

# श्रीधर पाठक

[ सं० १९१६-१९८५ ]

पाठक जी का जन्म आगरा जिले में फिरोजाबाद परगने के जोंधरी ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेज़ी की हुई थी। आपने सरकार के अनेक विभागों में काम किया था। अन्त में आप प्रान्तीय लाट के दफ्तर में सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। आपको आरम्भ से कविता करने की रुचि थी। आरम्भ में आपने व्रजभाषा में कविता आरम्भ की, फिर द्विवेदी जी के प्रभाव से खड़ी बोली में रचनाएँ कीं। अंग्रेजी के कवि गोल्ड स्मिथ के तीन ग्रन्थों का अनुवाद आपने पद्य में किया— एकान्तवासी योगी, ऊजड़ ग्राम, श्रान्त पथिक। पहली तथा तीसरी रचना खड़ी बोली में है। इन्होंने काश्मीर, शिमला, नैनीताल इत्यादि पहाड़ी प्रान्तों की बड़ी सैर की थी। इनकी रचनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन बड़ा सुन्दर हुआ है। लखनऊ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप सभापति थे।

आपकी रचनाओं में बड़ी मिठास है और आपकी भाषा बड़ी सरल, प्रसाद गुण पूर्ण है। आपकी कविता में शब्दों का बड़ा सुन्दर मेल है। आप प्रतिभासम्पन्न, भावुक, रुचिपूर्ण कवि हैं। आपने नये ढांचे के छन्द भी निकाले जिनमें गति और लय हैं। अपने समय के कवियों में सबसे अधिक प्रकृति-वर्णन पाठक जी ने किया है। उसी का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

पाठक जी प्रकृति के सुन्दर कवि हैं। यह वर्णन हिमालय पहाड़ पर के एक वन का है। ग्रीष्म, पावस और वसंत में इस वन की शोभा कैसी हो जाती है उसे आठ छन्दों में कवि ने दिखाया है। सरस और सरल भाषा में कवि ने शोभा का वर्णन किया है। अन्तिम छन्द में वन की महिमा है।

## वनाष्टक

प्रेमी की मूल सलोनी लता, बिलसी द्रुम-अंगन सो लिपटी।
नव-पल्लव-संग प्रसून खिले, रचै रंग विरंगित चित्र-पटी।।
विटपावलि बेलें बनावैं वितान, अनेकन एक सों एक सटी।
बन भूमि की ऐसी छबीली छटा, अलि के उर अंतर आनि अटी।।१।।

चारु हिमाचल आँचल में एक साल बिलासन कौ बन है।
मृदु-मरमर-शील झटै जल श्रोत है, परवत ओट है, निर्जन है।।
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन, प्रवीन बिहंगम कौ गन है।
भटक्यो तहाँ रावरौ भूलौ फिरै मद-बावरो-सो अलि को मन है।।२।।

कोयल तू कल बोलती री, शुक प्यारे हरे पट-भाते, अहो।
भोरी मैंना सुनेना रसीलन को, सो परेवा परेई के प्यारे, अहो।।
अहो मोर मचावत सोर, चकोर पपीहा पिया-रट-वारे अहो।
बनके तुम बाँके सदा के धनी, बन जीवन प्रान तिहारे अहो।।३।।

झिल्ली करैं झनकार कहूँ, फुफकारत सापिनें रोष भरी।
पर घू घू डरावने बोलत बोल, बिलापै बिलाट घरी पै घरी।।
कहुँ हूकतं स्यार है, भूकत ल्यार, लराई लरैं लहि लास मरी।
निसि भीलन-भावे न मन की, बनवास की वासना नासकरी।।४।।

विन्ध्य के वन्य विभाग में एक, सरोवर स्वच्छ सुहावना है।
कमलों से भरा, भ्रमरों से घिरा, विटपों से सजा, मन-भावना है।।
कलहंस स्वतंत्र कल्लोल करे, खग-वृन्द का बोल लुभावना है।
बहै मन्द समीर पराग लिये, अनुराग-हिये हुलसावना है।।५।।

जेठ के दारुन, आतप से, तप से जगतीतल जावै जला।
नभ-मंडल छाया मरुस्थल आ, दल बाँध के अंधड़ आवै चला।।
जल-हीन जलाशय व्याकुल हैं, पशु पक्षि प्रचंड है भानु-कला।
किसी कान-कुंज के धाम में प्यारे, करैं बिसराम चलौ तो भला।।६।।

काली घटा की घमंड घटा, नभ-मंडल तारक-वृंद खिले।
उजियाली निशा, छबिशाली दिशा, अतिसोहें धरातल फूले-फले।।
निखरे सुथरे बन-पंथ खुले तरु-पल्लव चद्रंकला से धुले।
वन शारदी-चंद्रिका-चादर ओढ़े, लसे समलंकृत कैसे भले।।७।।

भारत में वन! पावन तूहि, तपस्वियों का तप-आश्रम था।
जग-तत्वकी खोजमेंलग्नजहाँ, ऋषियों का अभग्न कियाश्रमथा।
जल प्राकृत बिस्व का विभ्रम औरथासात्विक जीवन का क्रम था।
महिमा बन-बास की थी तब और, प्रभाव पवित्र अनूपम था।।८।।

———

# रत्नाकर

[ सं० १९२३-१९८९ ]

जगन्नाथदास रत्नाकर का जन्म काशी में ऊँचे वैश्य घराने में हुआ था। ये फारसी तथा हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे, बी० ए० पास भी थे। वे बहुत दिनों तक महारानी अयोध्या के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। कलकत्ता साहित्य-सम्मेलन के सभापति हुए थे। ये ब्रजभाषा में कविता करते थे। इनकी भाषा बहुत ही प्रांजल, सुव्यवस्थित और शुद्ध होती थी। ये ब्रजभाषा के अन्तिम महान् कवि हो गये हैं। इन्होंने बहुत सी कविताएँ लिखी हैं जिनका संग्रह रत्नाकर नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी रचना में ओज भी बहुत है। इनकी कविता अनुप्रास यमक से अलंकृत है।

आपकी एक रचना उद्धवशतक है। श्रीकृष्ण मथुरा चले गये थे और उनके प्रेम में निवासी व्याकुल थे तब श्रीकृष्ण ने उद्धव को गोकुल का हाल-चाल लेने को भेजा। यहाँ उद्धव आये और सबसे बातें हुईं, फिर आप मथुरा लौट रहे हैं। जिस कठिनाई से आप चले और जिस अवस्था में मथुरा लौटे उसी प्रसंग के ये छन्द हैं।

वर्णन बहुत मार्मिक, करुणारसपूर्ण है। छन्दों में प्रवाह है। शोक से ब्रज के पेड़-पौधे भी गोपियों से आत्मभावापन्न हो गये हैं। पदयोजना बड़ी मधुर है, कल्पना दुरूह नहीं।

## उद्धव का मथुरा लौटना

धाई जित तित तैं बिदाई हेत ऊधव की,
गोपी भरी आरति संभारति न सांसुरी।
कहै रतनाकर मयूर पच्छ कोऊ लिये,
कोउ गुंज अंजुली उमाहे प्रेम आंसुरी।।

भाव भरी कोऊ लिये रुचिर सजाव दही,
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पांसुरी ।
पीत पट नन्द जसुमति नवनीत नैया,
कीरति कुमारी सुरवारी दई बांसुरी ॥१॥

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सो माथ,
भाषन की लाख लालसा सौं नहि जात है ।
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के,
कातर ह्वै प्रेम सौं सकल महि जात है ॥
सबद न पावत सो भाव उमगावत जो,
ताकि ताकि आनन ठगे से ठहि जात है ।
रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ,
रंचक हमारी सुनौ कहि रही जात है ॥२॥

कोऊ चले काँपि संग कोऊ उर चाँपि चले,
कोऊ चले कछुक अलापि हलबल से ।
कहै रतनाकर सुदेस तजि कोऊ चले,
कोऊ चले कहत संदेस अविरल से ॥
आँस चले काहू के सु काहू के उसांस चले,
काहू के दियै पै चन्द्रहास चले हल से ।
ऊधव के चलत चलाचल चली यौं चल,
अचल चले और अचले हु भये चल से ॥३॥

गोपी, ग्वाल, नन्द, जसुदा सो तौ बिदा ह्वै उठै,
उठत न पाय पै उठावत डगत है ।
कहै रतनाकर संभर सारथी पै नीठी,
दीठिनि बचाइ [illegible] है ॥

कुंजनि की कूल की कलिन्दी की रुएँदी दसा,
देखि देखि आंस औ उसांस उमगत है।
रथ तै उतरि पथ पावन जहाँ ही तहाँ,
विकल बिसूरि धूरि लोटन लगत है ॥४॥

चलत चित पारद की दम्भ कुंजली कै दूरी,
ब्रज मग धूरि प्रेम मूरि सुभ सीली लै।
कहै रतनाकर सु जोगिन विधान भावि,
अमित प्रमान ज्ञान गन्धक गुनीली लै॥
जारि घट अन्तर ही आह धूम-धारि सब,
गोपी बिरहागिनी निरन्तर जगीली लै।
आये लौटि लज्जित नवाये नैन ऊधौ अब,
सब सुख साधन कौ सूधै सौ जतन लै ॥५॥

कहै रतनाकर गंवाये गुन गौरव औ,
गरब गढ़ी को परिपूरन पतन लै।
छाये नैन नीर पीर कसक कमाये उर,
दीनता अधीरता के भार सो नतन लै॥
प्रेम रस रुचिर बिराग तूमड़ी मैं पूरि,
ज्ञान गूदड़ी मै अनुराग सौ रतन लै ॥६॥

आये दौरि पौरि लौ अवा सुनि ऊधव की,
और ही बिलोकि दसा दृग भरि लेत है।
कहै रतनाकर बिलोकि बिलखात उन्हें,
येऊ कर काँपत करेजै धरि लेत है॥
आवति कछूकि पूछबै औ कहिबे की मन,

परत न साहस पै दाऊ दरि लेत है।

आनन उदास सांस भरि उकसौहै करि,
सोहै करि नैननि निचौहै करि लेत है ॥७॥

प्रेम मद छाके पग परत कहाँ के कहाँ,
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ,
मानौ सुधियात कौऊ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पैं ना उदार अति आदर सौं,
सारस बहोलिनि जो आंस अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ,
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है ॥८॥

ब्रज रजरंजित सरीर सुभ ऊधव कौ,
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाये लेत।
कहै रतनाकर सुप्रेम मद माते हेरि,
थरकति बांह थामि थहरि थिराये लेत॥
कीरति कुमारी के दरस रस सद्य ही की,
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाये लेत।
परत न देत एक बूंद पुहुमी की कोछि,
पोंछि पोंछि पट निज नैननि लगाये लेत॥६॥

आंसुनि की धार और उभार कौ उसांसनि के,
तार हिचकीनि से तनिक टरि लेन देहु।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच,
भावनि के विषम प्रपंच सरि लेन देहु॥
आतुर ह्वै और हू न कातर बनावौ नाथ,
नसुके निवारि पीर धीर धरि लेन देहु।

कहत अबै है कहि आवत जहाँ लौं सबै
नैंकु थिर कढत करेजौ करि लेन देहु ।।१०।।

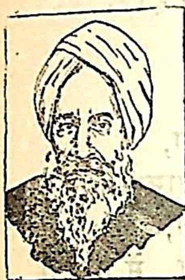
रावरे पठाये जोग देन कौं सिधाये हुते
ज्ञान गुन गौरव के अति उदगार मैं ।
कहै रतनाकर पै चातुरी हमारी सबै
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं ।।
उड़ि उधरानी किधौं ऊरध उसासनि मैं
बहि धौं बिलानी कहूँ आँसुन की धार मैं ।
चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि मैं
छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार मैं ।।११।।

---

# हरिऔध

[ सं० १९२२–२००३ ]

हरिऔधजी का जन्म आजमगढ़ जिले के निजामाबाद कसबे में हुआ था। इन्होंने हिन्दी मिडिल पास कर नारमल परीक्षा पास की और अध्यापकी आरम्भ की। आपने घर पर संस्कृत भी पढ़ी। बाद में आप कानून-गो हो गये। पेंशन लेने के बाद आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हो गये। आपका सम्पर्क सिक्खों के गुरु शाहजादा बाबा सुमेर सिंह से था। वही आपके काव्य गुरु थे। वह भारतेन्दु के समकालीन थे। "हरिऔध" जो आपका उपनाम है। आपका पूरा नाम अयोध्या सिंह उपाध्याय है। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे। आपके पितामह सिक्ख हो गये थे।



हरिऔध जी ने आरम्भ में ब्रजभाषा में रचना आरम्भ की। लेकिन समय के प्रभाव से, युग की पुकार से आपने खड़ी भाषा में रचना आरम्भ की। आपने पहले-पहल खड़ी बोली में प्रबन्ध-काव्य 'प्रिय प्रवास' लिखा। इसमें कृष्ण-कथा को आपने नया रूप दिया और कृष्ण को लोकनायक और जनसेवक के रूप में चरित्र किया है। यह पुस्तक महाकाव्य की श्रेणी की है। पहले-पहल वर्णवृत्तों में खड़ी बोली में इतना बड़ा प्रबन्ध-काव्य लिखा गया। खड़ी बोली होने पर भी भाषा बहुत मधुर और सरस है। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई और आज तक साहित्यप्रेमी इसे आदर की दृष्टि से देखते हैं। अनेक वर्णिक छंदों का इसमें प्रयोग किया गया है।

हरिऔध जी मुहावरेदार कविता लिखने में भी बहुत पटु थे। आपकी रचनाएँ प्रिय प्रवास के अतिरिक्त 'वैदेही-वनवास', 'पारिजात' हैं।

'रस कलश' ब्रजभाषा की कविताओं का संग्रह है। इसके अतिरिक्त चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल इन्हीं मुहावरेदार कविताओं का संग्रह है। इनकी रचना दो शैलिओं में होती थी। विशुद्ध संस्कृत में तत्सम शब्दों वाली जैसे प्रिय-प्रवास और चलती बोली में जैसे चौपदे। गद्य भी यह अच्छा लिखते थे।

नीचे का पहला अवतरण प्रिय प्रवास का है। वसंत में ब्रज का वर्णन है। दूसरा अवतरण उसके चौपदों में से है। वसंत का वर्णन मनोहर है। चौपदों में भी मुहावरों की छटा पठनीय है।

## वसंत दृश्य

विमुग्धकारी मधुमास मंजु था,
वसुंधरा थी कमनीयतामयी।
विचित्रता साथ विराजती रही,
बसत वासंतिकता वनांत में॥ १॥
नवीनभूता वन की विभूति में,
विनोदिता बेलि विहंग-वृंद में।
अनूपता व्यापित थी वसंत की,
निकुंज में कूजित कुंज पुंज में॥ २॥
प्रफुल्लिता कोमल पल्लवान्विता,
मनोज्ञता मूर्ति नितांत रंजिता।
वनस्थली थी मकरंद मोदिता,
अकीलिता कोकिल काकलीमयी॥ ३॥
निसर्ग ने, सौरभ ने, पराग ने,
प्रदान की थी अति कांत भाव से।
वसुंधरा को, पिक को, मिलिंद को,
मनोज्ञता, मादकता, मदांधता॥ ४॥

वसंत की भाव भरी विभूति सी,
मनोज की मंजुल पीठिका समा।
लसी कहीं थी सरसा सरोजिनी,
कुमोदिनी मानस मोदनी कहीं ॥ ५ ॥

नवांकुरों में, कलिका अनूप में,
नितांत न्यारे फल पत्र पुंज में।
निसर्ग द्वारा सु प्रसूत पुष्प में,
प्रभूत पुंजीकृत थी प्रफुल्लता ॥ ६ ॥

विमुग्धता की वर रंग भूमि सी,
प्रलुब्धता केलि वसुंधरोपमा।
मनोहर थीं तरु डालियाँ महा,
नई कली कोपल कोमलीं भरी ॥ ७ ॥

अन्यूनता दिव्य फलादि की, दिखा,
महत्व औ गौरव, सत्य त्याग का।
विचित्रता से करती प्रकाश थी,
स पत्रता पादप पत्रहीन थी ॥ ८ ॥

वसंत माधुर्य्य विकाशवर्द्धिनी,
क्रियामयी मार महोत्सवांकिता।
सु कोपलें थीं तरु अंक में लसी,
स अंगरागा अनुरागा रंजिता ॥ ९ ॥

नये नये पल्लववान पेड़ में,
प्रसून में आगत थी अपूर्वता।
वसंत में थी अधिकांश शोभिता,
विकासिता वेश बना प्रफुल्लिता ॥ १० ॥

अनार में औ कचनार में बसी,
ललामता थी अतिही लुभावनी।
बड़े लसे लोहिता रंग पुष्प में,
पलाश की थी अपलाशता ढकी ॥११॥

प्रसादिका लोचन सौरभों भरी,
वसंत वासंतिकता विभूषिता।
विनोदिता हो बहु थी विनोदिनी,
प्रिया समा मंजु प्रियाल मंजरी ॥१२॥

दिशा प्रसन्ना महि पुष्प संकुला,
नये दलों पूरित पादपावली।
वसंत में थी लतिका स यौवना,
अलापिका पंचम तान कोकिला ॥१३॥

अनूप स्वर्गीय सुगंधि में सना,
सुधा बहाता धमनी समूह में।
समीर आता मलयाचलांक से,
किसे बनाता न विनोद मग्न था ॥१४॥

प्रसादिनो पादप गंधवर्धिनी,
विकासिनी पुष्प, लता विनोदिनी।
अलौकिकी थी मलयानिली क्रिया,
वियोहिनी चित्त, बिहंग मोदिनी ॥१५॥

वसंत शोभा प्रतिकूल थी बड़ी,
वियोगमग्ना ब्रज भूमि के लिये।
बना रही थी उसको व्यथामयी,
विकास पाती वन पादपावली ॥१६॥

द्रुमों, उरों को दहती अतीव थीं,
शिखाग्नि तुल्या तरुपुञ्ज कोपलें।
अनार शाखा कचनार डार थी,
प्रतप्त अंगार अपार पूरिता ॥१७॥

नितांत ही थी प्रतिकूलतामयी,
प्रियाल की प्रीति निकेत मंजरी।
बना अतीवाकुल म्लान चित्त को,
विदारता था तरु कोबिदार को ॥१८॥

भयंकरी व्याकुलता प्रसूतिका,
सशंकता वर्द्धिनी मोदनाशिनी।
अतीव थी रक्तमयी अशोभना,
पलाश की पंक्ति पलाशिनी समा ॥१९॥

इतस्ततः भ्रांत समान घूमती,
प्रतीत होती अवली मलिंद की।
विदूषिता हो अति थी कलंकिता,
अलौकिकी कोकिल कांत कंठता ॥२०॥

प्रसून की मोहकता मनोज्ञता,
नितांत थी अन्य-मनस्कतामयी।
न वाँछिता थी न विनोदनीय थी,
अमानिता हो मलयानिलीयता ॥२१॥

बड़े यशस्वी वृषभानु गेह के,
समीप थी एक विचित्र वाटिका।
प्रबुद्ध ऊधौ इसमें इन्हीं दिनों,
प्रबोधने श्री ब्रज देव को गये ॥२२॥

वसंत को पा यह शांत वाटिका,
स्वभावतः कांत नितांत थी हुई।
परंतु होती उसमें स-शांति थी,
त्रिकाल की कौशलकारिणी क्रिया ॥२३॥

शनैः शनैः पादप पुञ्ज कोपलें,
विकास पा के करती प्रदान थीं।
स आतुरी रक्तिमता स्वकीय को,
प्रमोदनीया कमनीय श्यामता ॥२४॥

अनेक आकार प्रकार से मनो,
प्रकाशती वे यह गूढ़ मर्म्म थीं।
नहीं रंगेगा वह श्याम रंग में,
न आदि में जो अनुराग में रंगा ॥२५॥

## चौपदे

[ १ ]

आम बौरे बही बयार बसी,
सज लताएं हरी भरी डोलीं।
बोलबाला बसन्त का होते,
खिल उठी बेलि, कोयलें बोलीं॥

[ २ ]

भाँवरे बार बार भर भौंरे,
फूल की देखकर फबन भूले।
कोपलें देख कोयलें कूकीं,
दिल कमल खिल गया कमल फूले॥

[ ३ ]

हैं लुभाती दिल भला किसका नहीं,
लहलहाती बेलि फूलों की महक,
गूंज भौंरों की तितलियों की अदा
कोयलों की कूक चिड़ियों की चहक ।

[ ४ ]

है फबे आज बेल बूटे भी,
झाड़ियों पर लसी लुनाई है
दूब है पर अजब छटा छाई,
फूल सा घास रंग लाई है ।

[ ५ ]

लस रही है पलास पर लाली
या घिरी लानरी बबूलों से ।
हैं लुभाते किसे नहीं सेमल,
लाल हो लाल लाल फूलों से ॥

[ ६ ]

पर गये पर बहार सा मौसिम,
क्यों न अपनी बहार दिखला लें ।
लहलही बेलि चहचहे खग के,
डहडहे पेड़ डहडही डालें ॥

[ ७ ]

आज काँटे बखेर कर जी में
फूल भी हो गया कँटीला है ।
चिटकती देखकर गुलाब कली,
कोक सा चित हुआ चटीला है ।

[ ८ ]

फूल है घूम घूम चूम रही,
है कली को खिला खिला देती।
है महक से दिशा महकती सी,
है मलय पौन मोह दिल लेती॥

[ ९ ]

गूंजकर झुककर झिझककर झूमकर
भौंर करके भौंर हैं रस ले रहे।
फूल का खिलना विहँसना बिलसना,
दिल लुभाना देख हैं दिल दे रहे॥

[ १० ]

टूटना जब कि चाहिए था जाल,
तब गया और भी जकड़ जंजाल॥
बढ़ गई और भी सुखों की भूख,
जब कि खिचड़ी हुये हमारे बाल॥

[ ११ ]

रंगरलियाँ मना जनम खोया,
रंग लाती रही समझ मोटी।
तब खुली आँख और सुध आई,
जब कि ली काल ने पकड़ चोटी॥

———

# जयशंकर प्रसाद

[ सं० १९४६-१९९४ ]

जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म काशी के प्रसिद्ध ताम्बूल के व्यापारी सुंघनी साहु के घराने में हुआ था। स्कूल में आपकी शिक्षा कम हुई। घर पर ही आपने संस्कृत, हिन्दी तथा अंगरेजी की शिक्षा प्राप्त की। बाल्यावस्था से ही आपको कविता करने की रुचि थी। आपने ब्रजभाषा में रचनाएँ आरम्भ कीं, किन्तु आगे खड़ी बोली में करने लगे। आपने भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी में नाटकों का सर्जन आरम्भ किया। आपके नाटक ऊँची श्रेणी के, भारत के अतीत गौरव को जाग्रत करनेवाले हैं। आपने उपन्यास तथा कहानियाँ भी लिखी हैं। बहुत से गीतों के अतिरिक्त आपने कविता की एक सुन्दर पुस्तक 'आँसू' तथा एक प्रबन्ध काव्य 'कामायनी' लिखी है जो 'मङ्गला प्रसाद पारितोषिक' से पुरस्कृत है। आप हिन्दी कविता में उस शैली के प्रवर्तक माने जाते हैं जिसे छायावाद कहते हैं।

यहाँ उद्धृत कविता प्रसाद जी के नाटक 'स्कन्दगुप्त' से ली गई है। विजय के समय विजयी लोग आनन्दोल्लास में अपने देश के प्रति यह गीत गाते हैं। भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का संकेत करते हुए हमारे प्राचीन गौरव तथा संस्कृति का स्मरण कवि ने कराया है। प्राचीन इतिहास का भी दिग्दर्शन हो गया है, हमारे जातीय गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है। कविता में गम्भीरता है और भावों का स्तर बहुत ऊँचा है। भाषा में ओज भी है, प्रवाह भी है, माधुर्य भी है। इस कविता में हमें विशुद्ध प्रांजल हिन्दी का प्रयोग मिलता है।

दूसरा अंश महात्मा गौतम बुद्ध ने सारनाथ में वरुणा की कछार में जो संदेश दिया था, उस संबंध में है। दोनों रचनाएँ हमारी भारतीय संस्कृति की द्योतक हैं। प्रसाद बहुत बड़े भारतीय कवि हैं।

## भारतवर्ष

हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपकार।
उषा ने हँस, अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार॥
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम तम पुंज हुआ तब नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक॥
विमल वाणी ने वीणा ली, कमल कोमल कर में सप्रीत।
सप्तस्वर सप्तसिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम संगीत॥
बचाकर बीज रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण केतन लेकर निज हाथ, वरुण पथ में हम बढ़े अभीत।
सुना है दधीचि का वह त्याग, हमारी जातीयता विकास।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थियुग का मेरे इतिहास॥
सिन्धु सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह॥
धर्म्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शान्ति सन्देश, सुखी होते देखकर आनन्द॥
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट, दया दिखलाते घर घर घूम॥
यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि॥
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं॥

जातियों का उत्थान पतन आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर।
खड़े देखा, झेला हँसते, प्रलय में पले हुए वीर।
चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न॥
हमारे संयम में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव।
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव।
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है वैसा ज्ञान।
वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य सन्तान॥
जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

---

## वरुणा की शांत कछार

अरी वरुणा की शांत कछार
तपस्वी के विराम का प्यार

सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुंज।
जगत नश्वरता के लघुप्राण, लता पादप सुमनों के पुंज॥
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार॥
तुम्हारे कुंजों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद।
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद॥
स्निग्ध तरु की छाया में बैठ, परिषदें करती थीं सुविचार।
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार।
छोड़कर पार्थिव भोग-विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार।

पिता का वक्ष भरा वात्सल्य पुत्र का शैशव सुलभ दुलार॥

दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार।
सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार॥
मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़, जगत की ज्वाला करती शांत।
तिमिर का हरने को दुखभार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत॥
देव कर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार।
तोड़ सकते हो तुम भव बंध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार।
छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पद से लो सुगति सुधार।
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार।
विश्व मानवता का जय घोष, यहीं पर हुआ जलद स्वर मंद्र।
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रविचंद्र।
तुम्हारा वह अभिनंदन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार।
सकल वसुधा को दे संदेश, धन्य होता है बारंबार।
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी, ध्वंसों में वह झंकार।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगंत, विश्व वाणी का बने बिहार।

अरी वरुणा की शांत कछार।
तपस्वी के विराग का प्यार॥

———

# मैथिलीशरण गुप्त

## [ जीवित ]

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म संपन्न कुल में झाँसी जिले के चिरगाँव में हुआ था। आपके पिता जी भी कवि थे। उनका भी प्रभाव इन पर पड़ा। खड़ी बोली की कविता जिस समय शैशव काल में थी आपका आविर्भाव हुआ। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से आपको बहुत प्रोत्साहन मिला और उस युग में 'सरस्वती' में आप बराबर लिखा करते थे। उस समय 'भारत-भारती' लिखकर आप भारत-विख्यात हो गये। इसमें भारत के अतीत तथा वर्तमान का चित्रण ओजपूर्ण भाषा में किया गया है। राष्ट्रीय जागरण में उसने बहुत सहायता की।

आप प्रबन्ध-काव्य बहुत अच्छा लिखते हैं। आपकी रचनाओं में घटना का वर्णन तथा भावाभिव्यंजन दोनों विशेषरूप से पाये जाते हैं। आप सभी रसों का परिपाक सुंदरता से करते हैं। आपकी भाषा शुद्ध, सरल और व्याकरण-सम्मत होती है। आपकी एक और विशेषता है। समय के अनुसार आपकी शैली में परिवर्तन होता गया है। जयद्रथवध, साकेत, यशोधरा आपके सुन्दर प्रबन्ध-काव्य हैं। आपकी तीस-चालीस पुस्तकें हैं।

नीचे जो अवतरण दिये जाते हैं वे साकेत के हैं। पहला अवतरण वह है जब सीताजी चित्रकूट में एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई गा रही हैं। रामचन्द्र उन्हें देख रहे हैं। वनस्थली में यशस्वी सीता की छवि का वर्णन तथा उनके गान में भावों की अभिव्यक्ति कवि ने सुन्दरता और कुशलता से की है। अंतिम गीत उर्मिला के मुख से गवाया गया है। वियोगावस्था में उर्मिला ने यह गाया है। प्रकृति के सौंदर्य को कवि ने उर्मिला के मनोभावों से मिलाया है।

## वन में सीता जी

तरुतले बिराजे हुए, शिला के ऊपर,
कुछ टिके, धनुष की कोटि टेक कर भू पर।
निज लक्ष सिद्धि सी, तनिक घूमकर तिरछे,
जो सींच रही थी पर्णकुटी के बिरछे॥
उन सीता को, निज मूर्तिमती माया को,
प्रणयप्राणा को और कान्तकाया को।
यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी,
योगी के आगे अलख जोति ज्यों जागी॥
अंचल पट कटि में खोंस, कछोटा मारे,
सीता माता थी आज नई छवि धारे।
थे अंकुर हितकर कलश पयोधर पावन।
जन मातृ गर्वमय कुशल बदन भव भावन॥
पहने थीं दिव्य दुकूल अहा, वे ऐसे।
उत्पन्न हुआ हो देह संग ही जैसे॥
कर, पद, मुख तीनों अतुल अनावृत पट से।
थे पत्र-पुंज में अलग प्रसून प्रकट से॥
कन्धे ढक कर कच छहर रहे थे उनके।
रक्षक तक्षक से लहर रहे थे उनके।
मुख धर्म-बिन्दु-मय ओस-भरा अम्बुज-सा।
पर कहाँ कंटकित नाल सुपुलकित भुज सा॥
पाकर विशाल कच भार एड़ियाँ धँसती।
तब नखज्योति मिष, मृदुल अंगुलियाँ हँसती॥
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता।
तब अरुण एड़ियों से सुहाग-सा झड़ता॥

क्षोणी पर जो निज छाप छोड़ते चलते।
पद-पद्मों में मंजीर-मराल मचलते॥
रुकने झुकने में ललित लंक लच जाती।
पर अपनी छवि में छिपी आप बच जाती॥
तनु गौर केतकी कुसुम कली का गाभा।
थी अंग सुरभि के संग तरंगित आभा॥
भौंरो से भूषित कल्प लता-सी फूली।
गाती थीं गुनगुन गान भान-सा भूली॥
निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥

सम्राट स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं।
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं॥
धन तुच्छ यहाँ, यद्यपि असंख्य आकर हैं।
पानी पीते मृग सिंह एक तट पर हैं॥
सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया।
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया॥

क्या सुन्दर लता-वितान तना है मेरा।
पुंजाकृति गुंजित कुंज घना है मेरा॥
जल निर्मल, पवन, पराग सना है मेरा।
गढ़ चित्रकूट दृढ़ दिव्य बना है मेरा॥
प्रहरी निर्झर, परिखा प्रवाह की काया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ।
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ॥
श्रमवारिबिन्दुफलस्वास्थ्य शुक्ति जलती हूँ।

अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ॥

तनु लता सफलता स्वादु ग्राज ही ग्राया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।।

जिनसे ये प्रणयी प्राण त्राण पाते हैं।
जी भर के उनको देख जुड़ा जाते हैं।।
जब देव के देवर विचर-विचर ग्राते हैं।
तब नित्य नये दो-एक द्रव्य लाते हैं।।
उनका वर्णन ही बना विनोद सवाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।।

ग्राग्रो कलापि, निज चन्द्रकला दिखलाग्रो।
कुछ मुझसे सीखो ग्रौर मुझे सिखलाग्रो।।
गाग्रो पिक मैं ग्रनुकरण करूँ, तुम गाग्रो।
स्वर खींच तनिक यों उसे घुमाते जाग्रो।।
शुक, पढ़ो मधुर फल प्रथम तुम्हीं नें खाया!
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।।

ग्रयि राजहंसि, तू तरस-तरस क्यों रोती।
तू शुक्ति वंचिता कहीं मैथिली होती।।
तो श्यामल तनु के श्रमज बिन्दुमय मोती।
निज व्यजन पक्ष से तू ग्रँकोर सुध खोती।।
जिन पर मानस ने पद्म रूप मुँह बाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।।

ग्रो निर्झर, झरझर नाद सुना कर झड़ तू।
पथ के रोड़ों से उलझ-सुलझ, बढ़ ग्रड़ तू।।
ग्रो उत्तरीय, उड़, मोद पयोद, घुमड़ तू।
हम पर गिरि गद्गद भाव, सदैव उमड़ तू।।
जीवन को तूने गीत बनाया, गाया।

मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।।

ओ भोली कोल किरात भिल्ल बालाओ।
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई, आओ॥
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ।
दो अहो, नव्यता और भव्यता पाओ॥
लो, मेरा नागर भाव भेंट जो लाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥

सब ओर लाभ ही लाभ बोध विनिमय में।
उत्साह मुझे है विविध वृत्त सँचय में॥
तुम अर्द्ध नग्न क्यों रहो अशेष समय में।
आओ, हम कातें बुनें गान की लय में॥
निकले फूलों का रंग, ढंग से ताया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया॥

## गीत

सखि, निरख नदी की धारा।
ढलमल ढलमल चंचल, अंचल झलमल झलमल तारा
निर्मल जल अन्तःस्थल भरके,
उछल उछल कर, छल छल करके,
थल थल तरके, कल कल धरके,
बिखराता है पारा!
सखि, निरख नदी की धारा।

लोल लहरियाँ डोल रही हैं,
भ्रू-विलास-रस घोल रही हैं,
इंगित ही में बोल रही हैं,

मुखरित कूल किनारा!
सखि, निरख नदी की धारा।

पाया—अब पाया वह सागर,
चली जा रही आप उजागर।
कब तक आवेंगे निज नागर
अवधि-दूतिका-द्वारा?
सखि, निरख नदी की धारा।

मेरी छाती दलक रही है,
मानस-शफरी ललक रही है,
लोचन सीमा छलक रही है,
आगे नहीं सहारा!
सखि, निरख नदी की धारा।

———

# सुमित्रानन्दन पंत

पंत जी का जन्म अलमोड़ा में कौसानी में हुआ था। आपकी शिक्षा वहाँ तथा काशी में हुई थी। आपने पहले छायावादी शैली अपनायी थी जिस शैली पर पल्लव, वीणा तथा गुंजन नाम के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उसके पश्चात् आपने यथार्थवादी कविता आरम्भ की जिनमें ग्राम तथा समाज के जोवन का वर्णन आपने उस ढंग से किया जो उन्हें दीख पड़ा। आपने पुनः अपनी शैली बदली और प्रकृति तथा सामाजिक जीवन का चित्रण करने लगे।

आपकी पदावली बड़ी कोमल होती है। हिन्दी खड़ी बोली को मधुर बनाने का बहुत श्रेय आपको है। आपकी पदावली मनोहर भी है और कोमल भी। आपकी कल्पना की उड़ान गम्भीर होती है, किन्तु शुष्क नहीं होती। भावों को चित्रित करने में आप बहुत कुशल हैं। आपकी पंक्तियाँ नयनाभिराम चित्र उपस्थित कर देती हैं। मूलतः आप प्रकृति के कवि हैं और आपने विचित्र रूप में उसकी तस्वीर खींची है। जहाँ मनुष्य के वर्णन करते हैं वहाँ प्रकृति के साथ उसका सामंजस्य भी उपस्थित कर देते हैं।

नीचे उनके दो अवतरण दिये जाते हैं। पहली प्रार्थना है, दूसरा अवतरण ग्राम की छवि का वर्णन है। ग्राम पहले किस अवस्था में थे और अब वर्तमान सभ्यता में उनका क्या स्वरूप है यह बताया गया है। ग्राम-जोवन में क्या दोष आ गये हैं इस पर दृष्टि डाली गयी है। आगे कवि ने संकोर्णता छोड़ कर विशाल विश्व का प्रेम बताया है।

आपकी रचनाओं की संख्या अधिक है। मुख्य काव्य ये हैं— वीणा, पल्लव, गुंजन, ज्योत्स्ना, ग्राम्या, युगवाणी, स्वर्णधूलि, मधुज्वाल, ग्रंथि, पल्लविनी, स्वर्णकिरण।

शिर स्वर्ण शस्य मंजरी मुकुट गणपति वशिष्ट।
वाग्युद्ध वीर क्षण शुद्ध धीर नित कर्मनिष्ट॥
पिक-वयनी मधु ऋतु से प्रतिवत्सर अभिनंदित,
नव आम्र मंजरी मलय, तुम्हें करता अर्पित,
प्रावृट में तव प्रांगण घन गर्जन से हर्षित,
मर्कत कल्पित नव हरित प्रहारों में पुलकित।
शशि मुखी शरद करती परिक्रमा कुन्द स्मित,
वेणी में, खोंसे काँस, काँन में कुँई लसित,
हिम तुमको करता तुहिन, मोतियों से भूषित,
बहु सोन कोक युग्मों से तव सरि-सर कूजित।
अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप मोहित कविमन,
नभ के नीलम संपुट में तुम मरकत शोभन,
पर खोल आज निज अंतःपुर के पट गोपन,
चिर मोह मुक्त कर दिया देव, तुमने यह जन।

राम राम।

हे ग्राम देवता, रूढ़ि धाम!

तुम स्थिर परिवर्तन रहित कल्पवत एक याम,
जीवन संघर्षण विरत प्रगति पथ के विस्रम,
शिक्षक तुम, दस वर्षों से मैं सेवक, प्रणाम।
कवि अल्प उड़प मति, भव तितीर्षु-दुस्तर अपार,
कल्पना पुत्र मैं, भावी द्रष्टा, निराधार,
सौन्दर्य स्वप्न चर-नीति दंडधर तुम उदार,
चिर परंपरा के रक्षक, जन हित मुक्त द्वार
दिखलाया तुमने, भारतीयता का स्वरूप,
जन मर्यादा का स्रोत शून्य चिर अन्ध कूप,
जग से अबोध जानता न था मैं छाँह धूप,
तुम युग-युग के जन-विश्वासों के जीर्ण स्तूप।

## प्रार्थना

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन !
बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय जन;
स्मिति स्वप्न अधर पलकों में,
उर अंगों में सुख यौवन !
छू छू जग के मृत रज-कण
कर दो तृण तरु में चेतन,
मृन्मरण बाँध दो जग का,
दे प्राणों का आलिंगन !
बरसो सुख बन सुखमा बन,
बरसो जग-जीवन के धन !
दिशि दिशि में औ, पल पल में
बरसो संसृति के सावन !

## ग्राम देवता

राम राम,

हे ग्राम देवता, भूति ग्राम !
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन, पूर्ण काम ।।
शिर पर शोभित वर छत्र तड़ित स्मित घनश्याम ।
वन पवन मर्मरित-व्यजन, अन्न फल श्री ललाम ।।
तुम कोटि बाहु, वर हलधर कृषिवाहन बलिष्ट ।
मित प्रसन्न निर्वसन क्षीणोदर चिर सौम्य शिष्ट ।।

शिर स्वर्ण शस्य मंजरी मुकुट गणपति वशिष्ट।
वाग्युद्ध वीर क्षण शुद्ध धीर नित कर्मनिष्ट॥
पिक-वयनी मधु ऋतु से प्रतिवत्सर अभिनंदित,
नव आम्र मंजरी मलय, तुम्हें करता अर्पित,
प्रावृट में तव प्रांगण घन गर्जन से हर्षित,
मर्कत कल्पित नव हरित प्रहारों में पुलकित।
शशि मुखी शरद करती परिक्रमा कुन्द स्मित,
वेणी में, खोंसे काँस, काँन में कुँई लसित,
हिम तुमको करता तुहिन, मोतियों से भूषित,
बहु सोन कोक युग्मों से तब सरि-सर कूजित।
अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप मोहित कविमन,
नभ के नीलम संपुट में तुम मरकत शोभन,
पर खोल आज निज अंतःपुर के पट गोपन,
चिर मोह मुक्त कर दिया देव, तुमने यह जन।

राम राम।

हे ग्राम देवता, रूढ़ि धाम !
तुम स्थिर परिवर्तन रहित कल्पवत एक याम,
जीवन संघर्षण विरत प्रगति पथ के विश्राम,
शिक्षक तुम, दस वर्षों से मैं सेवक, प्रणाम।
कवि अल्प उड़प मति, भव तितीर्षु-दुस्तर अपार,
कल्पना पुत्र मैं, भावी द्रष्टा, निराधार,
सौन्दर्य स्वप्न चर-नीति दंडधर तुम उदार,
चिर परंपरा के रक्षक, जन हित मुक्त द्वार
दिखलाया तुमने, भारतीयता, का स्वरूप,
जन मर्यादा का स्रोत-शून्य चिर अन्ध कूप,
जग से अबोध जानता न था मैं छाँह धूप,
तुम युग-युग के जन-विश्वासों के जीर्ण स्तूप।

यह वही अवध ! तुलसी की संस्कृति का निवास !
श्रीराम यहीं करते, जन-मानस में विलास !
अह, सतयुग के खँडहर का यह दयनीय ह्रास !
वह अकथनीय मानसिक दैन्य का बना ग्रास !!

ये श्रीमानों के भवन आज साकेत धाम !!
संयम तप के आदर्श बन गये भोग काम !
आराधित सत्त्व यहाँ, पूजित धन, वश नाम ;
यह विकसित व्यक्तिवाद की संस्कृति राम ! राम !!

श्री राम रहे सामंत काल के ध्रुव प्रकाश,
पशु जीवी युग में नव कृषि संस्कृति के विकास,
कर सके नहीं वे मध्य युगों का तम विनाश,
रहे सदा जनता के तब से क्रीत दास।

जन पशु युग के थे गण देवों के पूजित पशुपति,
घी रुद्र चरों में कंठित कृषियुग की उन्नति।
श्री राम रुद्र की शिव में कर जन हित परिणति,
जीवित कर गये अहिल्या को थे सीतापति !

वाल्मीकि बाद आये श्री व्यास जगत वंदित,
वह कृषि संस्कृति का चर्मोन्नत युग था निश्चित;
बन गये राम तब कृष्ण, भेद मात्रा का मित,
वैभव युग की वंशी से कर जन मन मोहित।

तब से युग युग के हुए चित्र पट परिवर्तित,
'तुलसी' ने कृषि युग मत्त अनुरूप किया निर्मित।
खो गया सत्य का रूप रह गया नामामृत,
जन समाचरित वह सगुण बन गया आराधित !

गत सक्रिय गुण वन रूढ़ि रीति के जाल गहन-
कृषि प्रमुख देश के लिए हो गये जड़ बन्धन !

जन नहीं यंत्र जीवनोपाय के अब वाहन,
संस्कृति के केन्द्र नव वर्ग अधिप जन साधारण !

उच्छिष्ट युगों का आज सनातन ब्रज प्रचलित,
बन गयी चिरंतन रीति नीतियाँ स्थितियाँ मृत।

गत संस्कृतियाँ थीं विकसित वर्ग व्यक्ति आश्रित,
तब वर्ग व्यक्ति गुण, जन समूह गुण भव विकसित

अति मानवीय था निश्चित विकसित व्यक्तिवाद,
मनुजों में जिसने भरा देव-पशु का प्रमाद।
जन जीवन बना न विशद, रहा वह निराह्लाद,
विकसित नर नर अपवाद नहीं, जन गुण विवाद।

तब था न वाष्प विद्युत का जग में हुआ उदय :
थे मनुज यंत्र युग पुरुष सहस्र हस्त बल मय।
अब यंत्र मनुज के कर, पद बल सेवक समुदाय,
सामन्त मान अब व्यर्थ-समृद्धि विश्व अतिशय।

अब मनुष्यता को भौतिकता पर पानी जय,
गत वर्ग गुणों को जन-संस्कृति में होना लय;
देशों, राष्ट्रों को मानव जग बनना निश्चय,
अन्तर जग को फिर लेना बहिर्जगत आश्रय।

———

# सुभद्रा कुमारी चौहान

[ सं० १९६१-२००५ ]

सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म प्रयाग में क्षत्रिय कुल में हुआ था। आपकी शिक्षा प्रयाग में हुई थी। आपकी रुचि आरम्भ से ही साहित्य की ओर थी। सार्वजनिक कार्यों में आपका बहुत कुछ योगदान रहा है। आपके सामाजिक विचार बहुत उदार थे। आपका विवाह जबलपुर में हुआ था। वहीं आप अनेक बार जेल गयीं। वहीं आप एम. एल. ए. भी थीं। किन्तु आपने साहित्य-सृजन नहीं छोड़ा। आपको दो बार हिंदी साहित्य सम्मेलन से सेक्सरिया पुरस्कार मिल चुका है।



आपकी शैली सरल होती थी। साधारण जनता भी आपकी रचनाओं से रस लेती थी। आप वीर-रस और वात्सल्य भावों की मर्मस्पर्शी रचनाएँ करती थीं। यहाँ आपने अपना क्षेत्र बनाया था। आपकी पुस्तकें मुकुल, बिखरे मोती, त्रिधारा, कादंबिनी हैं।

यहाँ एक अवतरण दिया जा रहा है जो झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के संबंध में है। जिस वीरता से उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में इस देश का मुख उज्ज्वल किया उसका वर्णन चित्ताकर्षक है।

## झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,

चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

कानपूर के नाना की मुंहबोली बहन 'छबीली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी वह, नाना के सँग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी,

वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद जबानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना, ये थे उसके प्रिय खिलवार,

महाराष्ट्र-कुल देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ, रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाई झाँसी में,
सुभट बुन्देलों की विरुदावलि-सी वह आई झाँसी में,

चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी रोई रनिवासों में बेगम गम से थीं बेज़ार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाजार,
सरे आम नीलाम छापते थे अंग्रेजों के अखबार,
'नागपूर के जेवर ले लो,' 'लखनऊ के लो नौलखाहार',

यों परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी।
बुन्देलों हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी॥

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान
वीर सैनिकों के मन में था, अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुन्धूपन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रण चण्डी का कर दिया प्रगट आह्वान,

हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

महलों ने दी आग झोपड़ों ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतन्त्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ में लपटें छाई थीं,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,

जबलपूर, कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

इस स्वतन्त्रता-महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,
नाना धुन्धूपन्त, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम,

अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,
लेकिन आज जुर्म कहलाता उनकी जो कुरबानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मैदानों में,
लेफ्टिनेण्ट वौकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में,
जख्मी होकर वौकर भागा, उसे अजब हैरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी बढ़ी कालपी आई, कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थककर गिरा भूमि पर; गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
जमुना-तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार,
अंग्रेजों के मित्र सेंधिया ने छोड़ी रजधानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी,
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुँह की खाई थी,
काना और कन्दरा सखियाँ रानी के संग आईं थीं,
युद्धक्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,
पर पीछे ह्यू रोज आ गया, हाय,! घिरी अब रानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनो कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

तो भी रानी मार-काट चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया था वह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा नया घोड़ा था, इतने में आगये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार-पर वार,

घायल होकर गिरि सिंहनी उसे वीर-गति पानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी,
होवे चुप इतिहास, लगे, सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विलय, मिटा दे गोलों से चाहे फाँसी,

तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

---

# श्यामनारायण पांडेय

## [ जीवित ]

पांडेयजी आजमगढ़ जिले के रहनेवाले हैं। इस समय आप अपने जन्मस्थान डुमराँव जिला आजमगढ़ में ही रहते हैं। आपने वीररस को अपनाया है। आपकी प्रसिद्ध रचना 'हल्दीघाटी' पर दो हजार रुपयों का देव-पुरस्कार मिल चुका है। उसमें महाराणा प्रताप तथा मुगलों के युद्ध का वर्णन है। आपका दूसरा प्रबन्धकाव्य 'जौहर' है। प्रसाद-गुण आपकी विशेषता है। आपकी रचना में बड़ा प्रवाह है। छन्दों की पंक्तियाँ मानों फिसलती चलती हैं।

रणयात्रा प्रकरण हल्दीघाटी से लिया गया है। महाराणा प्रताप रण करने के लिए चल पड़े हैं। इस अवतरण में झरने का और वसन्त का वर्णन बड़ा ही मनोहर है, एवं ओज है, मधुरता है, सरलता भी है।

## रणयात्रा

गणपति के पावन पाँव पूज, वाणी पद को कर नमस्कार।
उस चंडी को, उस दुर्गा को, काली पद को कर नमस्कार।

उस कालकूट पीनेवाले के नयन याद कर लाल लाल।
डग-डग ब्रह्मांड हिला देता, जिसके तांडव का ताल ताल॥

ले महाशक्ति से शक्ति भीख, व्रत रख वनदेवी रानी का।
निर्भय होकर लिखता हूँ मैं, ले आशीर्वाद भवानी का॥

मन भर लोहे का कवच पहन, कर एकलिंग को नमस्कार।
चल पड़ा वीर, चल पड़ी साथ जो कुछ सेना थी लघु अपार॥

घन घन घन घन घन गरज उठे रण वाद्य सूरमा के आगे।
जागे पुश्तैनी साहस बल, वीरत्व वीर उर के जागे॥
सैनिक राणा के रण जागे, राणा प्रताप के प्रण जागे।
जौहर के पावन क्षण जागे मेवाड़ देश के व्रण जागे॥

जागे शिशोदिया के सपूत, बापा के वीर बबर जागे।
बरछे जागे; भाले जागे, खन खन तलवार तबर जागे॥
कुम्भलगढ़ से चलकर राणा हल्दीघाटी पर ठहर गया।
गिरि अरावली की चोटी पर केसरिया झंडा फहर गया॥

प्रणवीर अभी आया ही था अरि साथ खेलने को होली।
तब तक पर्वत पथ से उतरा पूजा ले भीलों की टोली॥
भैरव रव से जिनके आगे रण के बजते बाजे आये।
इंगित पर मर मिटने वाले वे राजे महराजे आये॥

सुनकर जय हर हर सैनिक रव वह अचल अचानक जाग उठा।
राणा को उर से लगा लिया चिर निद्रित जग अनुराग उठा॥
नभ की नीली चादर ओढ़े युग युग से गिरिवर सोता था।
तरु तरु के कोमल पत्तों पर मारुत का नर्तन होता था॥

तरु तरु चलते जब थक जाता दिनकर करता आराम वहीं।
अपनी तारक माला पहने हिमकर करता विश्राम वहीं॥
गिरि गुहा कन्दरा के भीतर अज्ञान सदृश था अन्धकार।
बाहर पर्वत का खंड खंड था ज्ञान सदृश उज्ज्वल अपार॥

वह भी कहता था अम्बर से मेरी छाती पर रण होगा।
जननी सेवक उर शोणित से पावन मेरा कण-कण होगा॥
पाषाण हृदय भी पिघल-पिघल आँसू बनकर गिरता झर झर।
गिरिवर भविष्य पर रोता था जग कहता था उसको निर्झर॥
वह लिखता था चट्टानों पर राणा के गुण अभिमान सजल।
वह सुना रहा था मृदु स्वर से सैनिक के रण के गान सजल॥

वह चला चपल निर्झर झरझर वसुधा उर ज्वाला खोने को।
या थके महाराणा पद को पर्वत से उतरा धोने को।।
लघु-लघु लहरों में ताप विकल दिनकर दिन भर मुख धोता था।
निर्मल निर्झर जल के अन्दर हिमकर रजनी भर सोता था।।
राणा पर्वत छवि देख रहा था, उन्नत कर अपना भाला।
थे विटप खड़े पहनाने को लेकर मृदु कुसुमों की माला।।
लाली के साथ निखरती थी पल्लव पल्लव की हरियाली।
डाली डाली पर बोल रही थी कुहू कुहू कोयल काली।।
निर्झर की लहरें चूम चूम फूलों के वन में घूम घूम।
मलयानिल बहता मन्द मन्द बौरे आमों में झूम झूम।।
जब तुहिन भार से चलता था धीरे-धीरे मारुत कुमार।
तब कुसुम कुमारी देख देख उस पर हो जाती थी निसार।।
उड़ उड़ गुलाब पर, बैठ बैठ करते थे मधु का पान मधुप।
गुन गुन गुन गुन गुन कर करते राणा के यश का गान मधुप।।
लोनी लतिका पर झूल झूल, बिखराते कुसुम पराग प्यार।
हँस हँसकर कलियाँ झाँक रही थीं खोल पँखुरियों के किवार।।
तरु तरु पर बैठे मृदु स्वर से गाते थे स्वागत गान शकुनि।
कहते यह ही बलि वेदी है इस पर कर दो बलिदान शकुनि।।
केसर से निर्झर कूल लाल फूले पलास के फूल लाल।
तुम भी वैरी सिर काट काट कर दो शोणित से धूल लाल।।
तुम तरजो तरजो वीर, रखो अपना गौरव अभिमान यहीं।
तुम गरजो गरजो सिंह करो रण-चंडी का आह्वान यहीं।।
खगरव सुनते ही रोम रोम राणा तन के फरहरा उठे।
जरजरा उठे सैनिक अरि पर पत्ते पत्ते थरथरा उठे।।
तरु के पत्तों से, तिनकों से बन गया वहीं पर राजमहल।

उस राजकुटी के वैभव से अरि का सिंहासन गया दहल।।

बस गये अचल पर राजपूत, अपनी अपनी रख ढाल प्रबल।
जय बोल उठे राणा की रख बरछे भाले करवाल प्रबल॥

राणा प्रताप की जय बोले, अपने नरेश की जय बोले।
भारत माता की जय बोले, मेवाड़ देश की जय बोले॥

जय एकलिंग, जय एकलिंग, जय प्रलयंकर शंकर हर हर।
जय हर हर गिरि का बोल उठा कंकड़ कंकड़, पत्थर पत्थर॥

देने लगा महाराणा दिन रात समर की शिक्षा।
फूँक फूँक भेरी वैरी की करने लगा प्रतीक्षा॥

——

# दिनकर

दिनकर का पूरा नाम रामधारी सिंह है और दिनकर उपनाम है। आप मुंगेर जिले के समेरिया घाट के रहनेवाले थे। पटना विश्वविद्यालय से आनर्स के साथ आपने बी. ए. परीक्षा पास की है। आपका स्वभाव बहुत सज्जनोचित है। आप में राष्ट्रीयता, देशभक्ति कूट-कूटकर भरी थी। आप बिहार के प्रतिनिधि कवि और हिन्दी के ऊँचे तथा उत्कृष्ट कवि थे।

आपकी भाषा में बहुत ओज और प्रवाह है। भाषा साथ ही साथ सरल है। आपने जो रचना की है उसमें भारत की आत्मा को जाग्रत् कर दिया है। भारत के प्राचीन गौरव को सजीव किया है। पुराने चरित्रों को नया प्रकाश प्रदान किया है। आपकी अनेक रचनाएँ हैं, जैसे रसवंती, हुंकार, ऊर्वशी। कुरुक्षेत्र आपका प्रबन्ध-काव्य है। यह पुस्तक इधर हिन्दी में निकली पुस्तकों में बहुत बलशाली है। महाभारत के चरित्रों को नयी दृष्टि से आपने देखा तथा नयी अभिव्यंजना की है।

जो अवतरण दिया जा रहा है वह उस समय का है जब रण समाप्त हो गया है, भीष्म पितामह बाण-शैय्या पर पड़े हैं। महाभारत के युद्ध का सिंहावलोकन हो रहा है। कवित्त छंद है वर्णन जोरदार है। युद्ध के परिणाम पर युधिष्ठिर अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। यह विचार वही है जो अहिंसा के प्रेमी अपने तर्क में कहा करते हैं।

## पश्चात्ताप

आई हुई मृत्यु से कहा अजेय भीष्म ने कि
योग नहीं जाने का अभी है इसे जानकर,
रुकी रहो पास कहीं, और स्वयं लेट गए
बाणों का शयन, बाण का ही उपधान कर

व्यास कहते हैं, रहे यों ही वे पड़े विमुक्त,
काल के करों से छीन मुष्टिगत प्राण कर
और पंथ जोहती विनीत कहीं आस पास
हाथ जोड़ मृत्यु रही खड़ी शान्ति मानकर।

शृंग चढ़ जीवन के आर पार हेरते से
योगलीन लेटे थे पितामह गंभीर से,
देखा धर्मराज ने विभा प्रसन्न फैली रही
श्वेत शिरोरुह शर ग्रथित शरीर से

करते प्रणाम, छूते सिर से पवित्र पद
उंगली को धोते हुए लोचनों के नीर से,
हाय पितामह, महाभारत विफल हुआ
चीख उठे धर्मराज व्याकुल, अधीर से।

वीर गति पाकर सुयोधन चला गया है
छोड़ मेरे सामने अशेष ध्वंस का प्रसार
छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन
व्योम में बजाता जय-दुन्दुभी सा बार बार

और यह मृतक शरीर जो बचा है शेष
चुप चुप, मानों पूछता है मुझसे पुकार
विजय का एक उपहार मैं बचा हूँ, बोल,
जीत किसकी है और किसकी हुई है हार।

'हाय पितामह हार जिसकी हुई है यह
ध्वंस अवशेष पर सिर धुनता है कौन
कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढ़ता है
लपटों से मुकुट का पट बुनता है कौन
और बैठ मानव की रक्त-सरिता के तीर
नियति के व्यंग्य भरे अर्थ गुनता है कौन
कौन देखता है शवदाह बन्धु-बान्धवों का
उत्तरा का करुण विलाप सुनता है कौन।

जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता।
तप से, सहिष्णता से त्याग से सुयोधन को
जीत नई नींव इतिहास की मैं धरता ।।
और वही वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता।
तो भी हाय, यह रक्तपात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख माँग मरता ।।

किन्तु, हाय, जिस दिन बोया गया युद्ध बीज,
साथ दिया मेरा नहीं मेरे दिव्य ज्ञान ने।
उलट दी मति मेरी भीम की गदा ने और,
पार्थ के शरासन ने अपनी कृपाण ने ।।
और जब अर्जुन को मोह हुआ रण बीच,
बुझती शिखा में दिया घृत भगवान ने।
सबकी सुबुद्धि पितामह, हाय, मारी गई,
सबको विनष्ट किया एक अभिमान ने ।।

कृष्ण कहते हैं, युद्ध अनघ है किन्तु मेरे,
प्राण जलते हैं पल पल परिताप से।
लगता मुझे है क्यों मनुष्य बच पाता नहीं
दह्यमान इस पुराचिन अभिशाप से ॥

और महाभारत की बात क्या, गिराये गये,
जहाँ छल छद्म से वरेण्य वीर आप से।
अभिमन्यु बध और सुयोधन का बध हाय,
हममें बचा है यहाँ कौन, किस पाप से ॥

एक ओर सत्यमयी गीता भगवान की है,
एक ओर जीवन की किरति प्रबुद्ध है।
जानता हूँ लड़ना पड़ा था हो विवश किन्तु,
लोहू सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है ॥

ध्वंसजन्य सुख, या कि साश्रु दुःख शान्तिजन्य,
ज्ञात नहीं, कौन बात नीति के विरुद्ध है।
जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य
या महान पाप यहाँ फूटा बन युद्ध है ॥

———

# बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

[ सन् १८९७-१९६० ]

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म ग्वालियर राज्य में हुआ था। कानपुर में आने पर इनका 'प्रताप' के सम्पादक अमर शहीद श्री गणेश शंकर विद्यार्थी से सम्पर्क हुआ और ये 'प्रताप' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने लगे। गणेश जी के शहीद हो जाने पर आपने 'प्रताप' को पूरी जिम्मेदारी से सँभाला और वर्षों तक बड़ी योग्यता से उसका सम्पादन किया। 'नवीन' जी ने अपनी तरुणावस्था में ही राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेना आरंभ कर दिया था। अतः आपको कई बार जेल-यात्रा भी करनी पड़ी।

'नवीन' जी ने १९१८ ई० में कविताएँ लिखना आरम्भ किया और कुछ ही दिनों में श्रेष्ठता अर्जित की। भावपूर्ण राष्ट्रीय कविताएँ लिखकर इन्होंने भगवती भारती का भंडार भरा है। 'नवीन' जी की भाषा बड़ी सशक्त और सजीव होती है। आपकी अनुभूतियाँ प्रखर और प्रांजल है। उनमें जहाँ एक ओर राष्ट्रीय चेतना का ओजस्वी स्वर मुखरित है, वहाँ दूसरी ओर प्रणय की सरस भावनुभूतियाँ भी विद्यमान हैं। आप श्रेष्ठ कवि ही नहीं, सफल पत्रकार और गम्भीर गद्य-लेखक भी हैं। आपकी विचारधारा मौलिक, भावपूर्ण और सजीव है। राजनीतिक कार्यों में अधिक व्यस्त रहने के कारण कवितादि लिखने का आपको बहुत कम समय मिलता है। आपकी कविताओं का संग्रह—'कुंकुम्' प्रकाशित हुआ है।

## हिन्दुस्तान हमारा है

कोटि-कोटि कण्ठों से निकली
आज यही स्वर-धारा है,
भारतवर्ष हमारा है, यह
हिन्दुस्थान हमारा है !

जिस दिन सबसे पहले जागे,
नव सिरजन के स्वप्न घने,
जिस दिन देश-काल के दो-दो,
विस्तृत विमल वितान तने,
जिस छिन नभ में तारे छिटके,
जिस दिन सूरज-चाँद बने,

तब से यह देश हमारा है,
यह अभिमान हमारा है !

जिस क्षण से जड़ रजकरण गतिमय
होकर जंगम कहलाये,
जब विहँसी प्रथमा ऊषा वह,
जबकि कमल-दल मुस्काये,
जब मिट्टी में चेतन चमका,
प्राणों के झोंके आये,

है तब से यह देश हमारा,
यह मन-प्राण हमारा है !

यहाँ प्रथम मानव ने खोले
निंदियारे लोचन, अपने,

इसी नभ तले उसने देखे
शत-शत नवल सृजन सपने
यहाँ उठे 'स्वाहा !' के स्वर औ'
यहाँ स्वधा के मंत्र बने

ऐसा प्यारा देश पुरातन
ज्ञान-निधान हमारा है !

सतलज, व्यास, चिनाब, वितस्ता,
रावी, सिन्धु तरंगवती
यह गंगा माता यह जमुना
लहर-लहर रस-रंगवती,
ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, कावेरी
वत्सलता - उत्संग - मती

इनसे प्लावित देश हमारा,
यह रसखान हमारा है।

विन्ध्य, सत्पुड़ा, नागा, खसिया,
ये दो औघट घाट महा,
भारत के पूरब-पच्छिम के,
ये दो भीम कपाट महा;
तुंग-शिखर, चिर अटल हिमाचल
है पर्वत-सम्राट यहाँ,

यह गिरिवर बन गया युगों से
विजय-निशान हमारा है !

क्या गणना है कितनी लम्बी
हम सबकी इतिहास-लड़ी
हमें गर्व है कि है बहुत ही
गहरी अपनी नींव पड़ी !

हमने बहुत बार सिरजी हैं
कई क्रान्तियाँ बड़ी-बड़ी।
इतिहासों ने किया सदा ही
अतिशय मान हमारा है!

है आसन्नभूत अति उज्ज्वल,
है अतीत गौरवशाली,
औ' छिटकी है वर्तमान पर
बलि के शोणित की लाली
नव-ऊषा-सी विजय हमारी
बिहँस रही है मतवाली
हम मानव को मुक्त करेंगे,
यही विधान हमारा है!

गर उठे चालीस कोटि जन
सुन यह बचन उछाह-भरे
काँप उठे प्रतिपक्षी जनगण,
उनके अन्तस्तल सिहरे;
आज नये युग के नयनों से
ज्वलित अग्नि के पुंज झरे।
कौन सामने आयेगा, यह
देश महान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है
यह हिन्दुस्थान हमारा है!

———

# टिप्पणियाँ

## कबीर साहब

आप = ईश्वर, आत्मा। अंधियारा = अज्ञान। आपा = घमंड। रासि = ढेर। मुख में परिया रेतैं = मुख पर मिट्टी पड़ेगी, मृत्यु होगी। मनका = माला का दाना। निरमया = बना हुआ है, भाग्य में है। जलहर = ताल। खलक चबेना काल का = सब सृष्टि काल के वश है। दुहेला = दुखदायी। सिख = शिष्य। नवना = झुकना। देवल = मन्दिर। मवास = दुर्ग या गढ़। जल = ब्रह्म तत्व। बन महिया = वन में। तेलक = मदारी। फन = चतुराई। तुलहा = उपाय।

## सूरदास

तन कुलसात = स्वस्थ है। कमला = धन। अजामिल = एक पापी, जिसने एक साधु के उपदेश से अपने पुत्र का नाम नारायण रखा। मरते समय उसने उसको पुकारा। भगवान का नाम लेने से उसे स्वर्ग मिल गया। करील = एक काँटेदार वृक्ष। पोट = गठरी। अरगजा = सुगन्धित उबटन। खाहि = मिट्टी। उधरि = नंगा होकर, स्पष्ट होकर। अहुठ = ३½ हाथ। पैग = पैर। ओछत = कंघी करते हुए। लवन = नवनीत। [illegible]बारे = [illegible]। छौरी = सफेद। आरि = हठ। अंकोरे = गोद। पतूखी = पत्ते का दोना। सिकते = बालू। दधि सुत = चन्द्रमा। करदकर = हाथ में छुरी लिए हुए।

## जायसी

कारी = कालिमा। गहनों छूटि पूनि चाहै गहा = ग्रहण से छूटकर अभी फिर ग्रहण लगाना चाहता है। गोई = गेंदा। जोरा = जोड़ा, खेल का प्रतिद्वंद्वी। हाल = कंपन। अगमन = जागे। सकर साथी = सकट की

स्थिति । समदि = आनंद से । पुरुष = योद्धा । मसि = अन्धकार । हाका = ललकारा । गोरा = (१) सामंत (२) सफेद । आदी = जन्म का । वादी = शत्रु । बानी = कांति । इंदु = इन्द्र । अहइ न बाजि हिन्दू = कहीं हिन्दू जानकर मुझ पर न पड़े । गोरै = गोरा ने । उठोनी = पहला धावा । स्यों = साथ । कूंड़ = लोहे की टोपी । बगमेल = सवारी का पात बाँधकर चलना । अधर धरमा मारै = धड़ या कबंध अधर में वार करता है । कंध = धड़ । किनारे = कुल, बिलकुल । भोगी = जो भोग-विलास करने वाले सरदार थे । भारत = घोर युद्ध । कुँवर = गोरा के साथी राजपूत । टूटै = कट जाता है । चांचर = होली । धूका = झूका । एहिहाथ करड्ड = इसे पकड़ो । गूँजता = गरजता हुआ । पलटि सिंह···आवा = जहाँ से आगे बढ़ता है वहाँ से पीछे हटकर फिर नहीं आता । बोलं बाहाँ = उसकी बाहें फड़कती हैं । (वह मुँह से नहीं बोलता) जाज, जगदेव = ऐतिहासिक वीर । रात = लाल । सरजै = सरजा ने । निहाऊ = निलई । डांड़ा = दंड । ओढ़न = ढाला । गुरुज = गदा । सदूर = शार्दूल । तस दाजा = ऐसा आघात पड़ा । ठाठर = ठठरी । फिरा संसारू = आँख के सामने संसार न रह गया । सुर पहुँचावा पान = देवताओं ने पान का बीड़ा दिया ।

## मीरा

छुद्र घंटिका = घुंघरूदार करधनी । भगतवत्सल = भक्तवत्सल । द्रौपदी की लाज = महाभारत की विख्यात कथा । हिरनकस्यप = प्रहलाद का पिता, एक दैत्य । बूड़ते गजराज = गजग्राह = की कथा ।

## तुलसीदास

कामतरु = कल्पतरु । सोच न कूच मुकाम की = संसार की यात्रा के समय राम के नाम के कारण सोच नहीं । साम = सामवेद । सकृत = एक बार । ताप = क्लेश । परतीति = विश्वास । छाम = दुर्बल । घोसु = घोष, प्रकार । कुम्भज = जो ऋषि समुद्र सोख गये थे । सोसु = शोषण । पोतो = जहाज । ओतो = उतना । दशरथी = दशरथ के पुत्र ।

तरनी = नाव। बन-बाहन = नाव। नौद्रुम = नय्य वृक्ष। तून = तरकस। लोचन-लाहू = लोचन का लाभ। कलेवर = अंग। माखै = रोष किया। छत्रक कुड = कुकुरमुत्ता। सिरिस सुमन कन = सिरिस के पुष्प का कण। कोला = वराह। कनहारू = खेनेवाला। बटाऊ = राहगीर।

डाबर = गंगा। अर्क = धतूरा। जवास = एक घास। कलिहि = कलियुग। अगस्त = एक नक्षत्र जो भादों में सिंह लग्न में उदित होता है।

## रहीम

अच्युत चरन तरंगिनी = गंगा। हरि न बनायो = क्योंकि उस दशा में गंगा को मेरे चरणों में रहना पड़ेगा। इंदव भाल = जिसके ललाट पर चंद्रमा हैं! अर्थात् शिव बनाना जिससे तुम मेरे सिर पर रहो। बंस दिया = बाँस पर लगाया आकाश-दीप। पत्र = पखुड़ि। पितहि = अर्थात् जल को। सकुचिस्तीत = सिकुड़कर चंद्रमा के शीत को जल में उसकी वृद्धि के लिये पड़ने देता है। पिता-पुत्र में इतनी प्रीति है कि परकीय वैरभाव का कोई फल नहीं होने पाता। अनखाये = बिना खाये। अनखाय = क्रुद्ध हो। शेष = (१) शेषनाग। (२) बचा। मूकन = मुक्कियों से।

## बिहारी

स्यामु = (१) कृष्ण, (२) काला रंग, (३) पाप। हरित द्युति = (१) फीका, कम सुन्दर, (२) हरा रंग (३) जिसका प्रभाव हर लिया गया हो। समरु = कामदेव। कनकु = (१) धतूरा, (२) सोना। प्रयागु = त्रिवेणी होती है = कृष्ण का रंग यमुना, राधा की गंगा, भक्त का अनुराग सरस्वती। साथ = समूह। पगारु = गड़हा। गैन = आकाश। बृषभानुजा = (१) राधा, बृषभानु की पुत्री। (२) वृषभ की छोटी बहन। हलधर = बलदेव, २ हल खींचने वाला बैल।

## रसखानि

सेस = शेषनाग। अछेद = अछेद्य। कछोटी = कछनी। कोटो = करोड़। पुरन्दर = इन्द्र। कालिंदी = यमुना। कलधौत = स्वर्ण।

## नरोत्तमदास

भौन = मकान। उपानह = जूता। कंचन = सोना। गजराजहु = हाथी को।

## हरिश्चन्द्र

प्रबोधो = समझाओ। इनारुन = इंद्रायण; एक फल जो देखने में सुन्दर होता है, किन्तु खाने में बहुत कड़ुवा। अंकम = गोद। मुक्तगुच्छ = मोतियों का गुच्छा।

## दीनदयाल गिरि

जीवन = (१) जल, (२) जिन्दगी। द्विजन = (१) पक्षियों का समूह (२) ब्राह्मण। सुरकानन = (१) नंदनवन (२) कानों में स्वर। नीरनिधि = समुद्र।

## श्रीधर पाठक

विटपावली = वृक्षों की पंक्तियाँ। खग-वृन्द = पक्षियों का समूह। दारुन = कठिन। आतप = घाम। भानु-कला = सूर्य की किरणें।

## रत्नाकार

गुंज-अंजुल = अँगुली भर घुंघची। रंचक = तनिक। चलचित-पारद = चंचल चित्ररूपी पारा। निचौहैं = नीचे।

## हरिऔध

मधु = चैत्र। पल्लवान्विता = पत्तों में युक्त। काकली = मधुर रसीली कूक। निसर्ग = प्रकृति। पुञ्जीकृत = सूत्र की हुई। प्रसादिका = प्रसन्न करने वाली। इतस्ततः = इधर-उधर। डहडहे = हरे-भरे। लालरी = लाल फूलों वाला पेड़। खिचड़ी बाल = हम बूढ़े हुए।

## जयशंकर 'प्रसाद'

व्योमतमपुंज = आकाश में अन्धकार का समूह। संसृति = संसार। अरुणकेतन = लाल झंडा। पुरंदर = इन्द्र। वरुणा की शांत कछार = सारनाथ। वाद = विवाद। भाग...अधिकार = हृदय तथा मस्तिष्क में बराबर-बराबर विचारों का विभाजन। पार्थिव भाग विभूति = सांसारिक सुख। तथागत = गौतमबुद्ध। अतिवाद = जिसमें इसी जीवन के सम्बन्ध की बातें हो। मध्य पथ = गौतमबुद्ध का पथ जिसमें बीच का धार्मिक मार्ग बताया गया। ध्वंसों = सारनाथ का खंडहर।

## मैथिलीशरण गुप्त

प्रणय-प्राण = प्रणय की जो प्राण थीं। अलख = ईश्वरीय। उत्पन्न जैसे = ऐसा ठीक मानो देह के साथ ही आया हो। तक्षक = नाग। गाभा = नयी पत्ती। उटज = झोपड़ी। शुक्ति = सीपी। उत्तरीय = दुपट्टा। बोध विनिमय = बुद्धि के विनिमय में।

## सुमित्रानन्दन पंत

जीवन = (१) जल, (२) जिंदगी। संस्कृति = संसार। कृषिवाहक = खेती करनेवाले। पहली १३ पंक्तियों में गांव की प्राकृतिक शोभा तथा छवि का वर्णन है। उसके पश्चात् गाँवों की जो अवस्था आज हो गई है, रूढ़ि के वह शिकार हैं, गति उनमें नहीं हैं, युग के साथ वह नहीं बताया है। कल्पनायुक्त = कवि। साकेत धाम = जहाँ राम रहते थे। व्यक्तिवाद

= वह सामाजिक संगठन जिसमें व्यक्ति को प्रधानता दी जाय । सामंतकाल = जब सरदारों, धनी लोगों का शासन था । अहिल्या = गौतम की पत्नी । वाल्मीकि = आदि कवि । व्यास = महाभारत के रचयिता ।

## सुभद्राकुमारी चौहान

छबीली = लक्ष्मीबाई का एक नाम । भवानी = दुर्गा । चित्रा = चित्रांगदा, अर्जुन की स्त्री । बेगम = अवध की रानी जिनकी संपत्ति अंग्रेजों ने छीन ली थी । नागपुर के जेवर = भोसला के राजपरिवार के गहने । नाना धुंधूपंत = नाना साहिब महाराष्ट्र सरदार । तांतिया तोपी = भील सरदार । अजीमुल्ला 'अहमदशाह = सत्तावन के युद्ध संचालक । कुँवरसिंह = बिहार के राजा जो ५७ के युद्ध में लड़े थे । वौकर = अंग्रेजी जनरल ।

## श्यामनारायण पाण्डेय

तांडव = शिव का नृत्य । इंगित = इशारा । शकुनि = पक्षी ।

## दिनकर

उपधान = तकिया । मुष्टिगत = मुट्ठी में लेकर । धर्मराज = युधिष्ठिर । सुयोधन = दुर्योधन । नियति = भाग्य । मनोबल = आत्मिक शक्ति । पार्थ = अर्जुन । दह्यमान = जलनेवाला ।

## बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

वितान = बड़ा चँदोआ । लोचन = नेत्र । सृजन = सृष्टि । आसन्न-भूत = समीप का बीता हुआ समय । अतीत = पुराना बीता हुआ ।